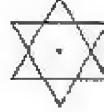
॥ श्रीः ॥

श्रीकृष्णानन्दवागीशभट्टाचार्यप्रणीतः

बृहत्तन्त्रसारः

भाषाटीकासमन्वितः



प्रथमः परिच्छेदः

मङ्गलाचरणं ग्रन्थसूचना च

नत्वा कृष्णपदद्वन्द्वं ब्रह्मादिसुरवन्दितम् ।
गुरुञ्च ज्ञानदातारं कृष्णानन्देन धीमता ॥
तत्तद्ग्रन्थगताद्वाक्यान्नानार्थं प्रतिपद्य च ॥
सौकर्यार्थञ्च संक्षेपात्तन्त्रसारः प्रतन्यते ।
उच्यते प्रथमं तन्त्र लक्षणं गुरुशिष्ययोः ॥

मंगलाचरण और ग्रन्थ-सूचना—ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा वन्दित श्रीकृष्ण के चरणयुगल में नमस्कार करके ज्ञानदाता श्रीगुरु को प्रणामपूर्वक बुद्धिमान मैं कृष्णानन्द नाना तन्त्रग्रन्थों में प्रतिपादित वाक्यों के अर्थ-वैविध्य को सुगम करने के उद्देश्य से संक्षेप में तन्त्रसार ग्रन्थ की रचना करता हूँ। इसके प्रथम तन्त्र में गुरु-शिष्य के लक्षणों का वर्णन करता हूँ।

गुरुलक्षणम्

शान्तो दान्तः कुलीनश्च विनीतः शुद्धवेशवान् ।
शुद्धाचारः सुप्रतिष्ठः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान् ।
आश्रमी ध्याननिष्ठश्च तन्त्रमन्त्रविशारदः ॥
निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते ॥

आगमसंहितायाम्—

उद्धर्त्तुञ्चैव संहर्त्तु समर्थो ब्राह्मणोत्तमः ।
तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते ॥

गुरु के लक्षण—गुरु को शान्त, दान्त, कुलीन, विनीत, शुद्ध वेष-सम्पन्न, विशुद्धाचार, सुप्रतिष्ठ, पवित्र स्वभाव, कार्य-दक्ष, खूब बुद्धिमान, आश्रमी, ध्याननिष्ठ, तन्त्रमन्त्र-विशारद, निग्रहानुग्रह में समर्थ होना चाहिये। इन गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही गुरुरूप में मान्य है। आगम-संहिता के अनुसार मन्त्र-दानादि द्वारा उद्धार और शापादि द्वारा विनाश करने में समर्थ, तपस्वी, सत्यवादी और गृहस्थ ब्राह्मण को ही गुरु बनाना चाहिये।

गुरुमाहात्म्यम्

ज्ञानार्णवे—

गुरौ मानुषबुद्धिन्तु मन्त्रे चाक्षरबुद्धिकम् ।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥
जन्महेतू हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः ।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माधर्मप्रदर्शकः ॥
गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः ।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥
गुरोर्हितं प्रकर्त्तव्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
अहिताचरणाद्देवि विष्ठायां जायते कृमिः ॥
शरीरदः पिता देवि ज्ञानदो गुरुरेव च ।
गुरोर्गुरुतरो नास्ति संसारे दुःखसागरे ॥
यस्य वक्त्राद्विनिर्यातं पूर्णब्रह्ममयं वपुः ।
तारयेन्नात्र सन्देहो नरकार्णवतो ध्रुवम् ॥
मन्त्रत्यागाद्भवेन् मृत्युर्गुरुत्यागाद्दरिद्रता ।
गुरुमन्त्रपरित्यागाद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्यदेवताः ।
स याति नरकं घोरं सा पूजा विफला भवेत् ॥

गुरु-माहात्म्य—ज्ञानार्णव के अनुसार गुरु को मनुष्य, मन्त्र को अक्षर और प्रतिमा को शिला समझने वाला नरकगामी होता है। जन्मदाता होने से माता-पिता पूज्य हैं, यह सत्य है; किन्तु धर्माधर्म दिखाने वाला गुरु उनसे भी अधिक पूज्य है। गुरु ही पिता-माता-देवता और एकमात्र शरण हैं। शिव के रुष्ट होने पर गुरु बचा सकता है; परन्तु गुरु के रुष्ट होने पर कोई नहीं बचा सकता। शरीर, मन, वचन और कर्म से गुरु का हित करना

चाहिये। उनका अनिष्ट करने से विष्टा का कीड़ा होना पड़ता है। पिता शरीरदाता है, किन्तु गुरु ज्ञानदाता है। दुःखमय संसार-सागर में गुरु से श्रेष्ठ कोई नहीं है। गुरुमुख से निकला हुआ शब्दमय पूर्ण ब्रह्म निश्चय ही नरक से बचाता है। मन्त्र-त्याग से मृत्यु, गुरु-त्याग से दरिद्रता और गुरु तथा मन्त्र दोनों के त्याग से नरकगामी होना पड़ता है। गुरु के सन्निहित रहने पर जो अन्य देवता का पूजन करता है, उसे घोर नरक में जाना पड़ता है और उसकी पूजा निष्फल होती है।

श्रीक्रमे—

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता।
तस्मान्मन्येत सततं पितुरप्यधिकं गुरुम्॥
गुरुवद् गुरुपुत्रेषु गुरुवत्तत्सुतादिषु।
गुरुवत्पूजनं कार्यं तोषणं वाक्यपालनम्।
गुरुवद्भजनं कार्यं सर्वदा गुरुसन्ततौ॥

श्रीक्रम के अनुसार ब्रह्ममन्त्र-दाता गुरु शरीरदाता पिता से श्रेष्ठ है। इसलिये निरन्तर पिता से अधिक गुरु सम्मान के योग्य है। गुरु के पुत्र और पौत्रों के प्रति भी गुरुवत् पूज्यभाव रखना चाहिये। इनका पूजन भी गुरु के समान करना चाहिये। उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये और उनके वचनों का पालन करना चाहिये। गुरु की सन्तानों का भजन सदैव करना चाहिये।

निगमकल्पद्रुमे—

अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव च दैवतम्।
अमार्गस्थोऽपि मार्गस्थो गुरुरेव सदागतिः॥
आयान्तमग्रतो गच्छेद्गच्छन्तं तमनुव्रजेत्।
आसने शयने वाऽपि न तिष्ठेदग्रतो गुरोः।
अनुज्ञां प्राप्य तिष्ठेत्तु नैवं शापमवाप्नुयात्॥

निगमकल्पद्रुम के अनुसार विद्यावान अथवा विद्याविहीन गुरु देवता के समान होता है। अमार्गी या समार्गी दोनों प्रकार के गुरु ही सदैव सद्गति-प्रदायक होते हैं। गुरु को आता देखकर आगे जाकर स्वागत करना चाहिये। जाता देख उनके पीछे-पीछे चले; किन्तु उन्हें बैठा या सोया देखकर उनके सामने न बैठे। गुरु की अनुमति प्राप्त होने पर ही बैठना चाहिये; अन्यथा शाप प्राप्त होता है।

तथा क्रियासारे—

गुरुर्माता पिता स्वामी बान्धवः सुहृदः शिवः।
इत्याधाय मनो नित्यं भजेत् सर्वात्मना गुरुम्॥

क्रियासार के अनुसार गुरु ही माता-पिता, स्वामी, बान्धव, सुहृद और शिव है—ऐसा विचार रखकर मन में नित्य गुरु का भजन सर्वात्मभाव से करना चाहिये।

निन्द्यगुरुलक्षणम्

क्रियासारसमुच्चये—

श्वित्री चैव गलत्कुष्ठी नेत्ररोगी च वामनः।
कुनखी श्यावदन्तश्च स्त्रीजितश्चाधिकाङ्गकः॥
हीनाङ्गः कपटी रोगी बह्वाशी बहुजल्पकः।
एतैर्दोषैर्विहीनो यः स गुरुः शिष्यसम्मतः॥

निन्द्य गुरु-लक्षण—क्रियासारसमुच्चय के अनुसार श्वेत कुष्ठी, गलित कुष्ठी, नेत्ररोगी, वामन, खराब नख वाले, काले दाँतों वाले, स्त्रीजित, अधिकांगी; जैसे—छः अंगुली वाले, हीनांग; जैसे—कम अंगुली वाले, कपटी, रोगी, पेटू, बहुत बोलने वाले को गुरु नहीं बनाना चाहिये। इन दोषों से विनिर्मुक्त व्यक्ति को ही शिष्य गुरु बनावे।

यामले—

अभिशप्तमपुत्रश्च कदर्यं कितवं तथा।
क्रियाहीनं शठञ्चापि वामनं गुरुनिन्दकम्॥
जलरक्तविकारश्च वर्जयेन्मतिमान् सदा।
सदा मत्सरसंयुक्तं गुरुं तन्त्रेण वर्जयेत्॥

यामल के अनुसार अभिशप्त, अपुत्री, कृपण, धूर्त, क्रियाहीन, शठ, वामन, गुरुनिन्दक, जल-रक्तविकारयुक्त व्यक्ति को बुद्धिमान गुरु न बनावे। ईर्ष्यालु व्यक्ति को भी तन्त्रमार्ग में गुरु नहीं बनाना चाहिये।

वैशम्पायनसंहितायाम्—

अपुत्रो मृतपुत्रश्च कुष्ठी च वामनस्तथा।
इत्याद्यपि बोध्यमिति।

वैशम्पायनसंहिता के अनुसार पुत्रहीन या जिसके पुत्र मर गये हों, कोढ़ी, वामन, इत्यादि को भी गुरु नहीं बनाना चाहिये।

शिष्यलक्षणम्

शान्तो विनीतः शुद्धात्मा श्रद्धावान् धारणक्षमः।
समर्थश्च कुलीनश्च प्राज्ञः सच्चरितो यतिः॥
एवमादिगुणैर्युक्तः शिष्यो भवति नान्यथा।

अन्यच्च—

पुण्यवान् धार्मिकः शुद्धो गुरुभक्तो जितेन्द्रियः।

शिष्यः योग्यो भवेत् सो हि दानध्यानपरायणः ॥

शिष्य-लक्षण—शान्त, विनीत, शुद्धात्मा, श्रद्धालु, मेधावी, कार्यदक्ष, कुलीन, प्रज्ञावान, सच्चरित्र, यति आदि गुणों से जो युक्त हो, उसे ही शिष्य बनाना चाहिये; अन्यथा शिष्य न बनावे। इसके अतिरिक्त पुण्यवान, धार्मिक, शुद्ध, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय, दान-ध्यान-परायण मनुष्य ही शिष्य बनाने के योग्य होता है।

निषिद्धशिष्यलक्षणम्

पापिने क्रूरचेष्टाय शठाय कृपणाय च।
दीनायाचारशून्याय यन्त्रद्वेषपराय च॥
निन्दकाय च मूर्खाय तीर्थद्विषपराय च।
गुरुभक्तिविहीनाय न देया मलिनाय च॥

निषिद्ध शिष्य-लक्षण—पापी, क्रूरकर्मा, शठ, कंजूस, दीन, आचारशून्य, मन्त्रद्वेषी, निन्दक, मूर्ख, तीर्थद्वेषी, गुरुभक्ति-विहीन और गन्दे वेष-भूषा वाले को मन्त्रोपदेश नहीं देना चाहिये।

आगमसारे—

अलसाः मलिनाः क्लिन्नाः दाम्भिकाः कृपणास्तथा।
दरिद्रा रोगिणो रुष्टा रागिणो भोगलालसाः॥
असूयमत्सरग्रस्ताः सदा परुषवादिनः।
अन्यायोपार्जितधनाः परदाररताश्च ये॥
विदुषां वैरिणश्चैव त्याज्याः पण्डितमानिनः।
भ्रष्टाचाराश्च ये कष्टवृत्तयः पिशुनाः खलाः॥
बह्वाशिनः क्रूरचेष्टाः दुरात्मानश्च निन्दिताः।
इत्येवमादयोऽन्येऽपि पापिष्ठाः पुरुषाधमाः।
एवम्भूताः परित्याज्याः शिष्यत्वेनोपकल्पिताः॥

आगमसार के अनुसार जो आलसी, मलिन, क्लिन्न, दम्भी, कृपण, दरिद्र, रोगी, रूठा हुआ, अनुरागी, भोग-लालसी, दूसरों में दोषद्रष्टा, ईर्ष्यालु, सदैव कटुभाषी, अन्याय से उपार्जित धन वाला, परदाररत, विद्वानों का वैरी हो, साथ ही मान्य पण्डित का त्याग कर देना चाहिये अर्थात् शिष्य नहीं बनाना चाहिये।

जो आचारहीन हो, कष्ट से धनोपार्जन करता हो, चुगलखोर हो, नीच हो, बहुत खाने वाला हो, क्रूर चेष्टा वाला हो, दुरात्मा, निन्दित हो, पापी पुरुषाधम हो, उसका भी त्याग कर देना चाहिये अर्थात् उसे शिष्य नहीं बनाना चाहिये।

अथ गुरुताशिष्यताविधिः गुरुसन्निधौ कर्त्तव्याकर्त्तव्यनिरूपणञ्च—

गुरुता शिष्यता वापि तयोर्वत्सरवासतः।

गुरु-शिष्यसम्बन्ध कर्त्तव्याकर्तव्य निरूपण—गुरु और शिष्य एक वर्ष तक साथ रहे, फिर परीक्षा करके गुरु या शिष्य बनावें।

तथा चोक्तं सारसंग्रहे—

सद्गुरुः स्वाश्रितं शिष्यं वर्षमेकं परीक्षयेत्।

स्वप्ने तु न कालनियमः; 'स्वप्ने तु नियमो न ही'ति नारदवचनात्। तत्रैव—

राज्ञि चामात्यजो दोषः पत्नीपापं स्वभर्त्तरि।
तथा शिष्यार्जितं पापं गुरुः प्राप्नोति निश्चितम्॥
वर्षैकेण भवेद्योग्यो विप्रो गुणसमन्वितः।
वर्षद्वयेन राजन्यो वैश्यस्तु वत्सरैस्त्रिभिः।
चतुर्भिर्वत्सरैः शूद्रः कथिता शिष्ययोग्यता॥

सारसंग्रह के अनुसार गुरु शिष्य को अपने आश्रय में एक वर्ष तक रखकर उसकी परीक्षा करे। स्वप्न में प्राप्त मन्त्र के लिये कोई कालनियम नहीं है। नारद मुनि के वचन हैं कि स्वप्न में प्राप्त मन्त्र के लिये कोई नियम नहीं है। जैसे मन्त्रीकृत दोष राजा को और पत्नीकृत पाप पति को लगता है, वैसे ही शिष्य के द्वारा अर्जित पाप निश्चय ही गुरु को लगता है।

ब्राह्मण एक वर्ष, क्षत्रिय दो वर्ष, वैश्य तीन वर्ष और शूद्र चार वर्ष तक गुरु के साथ रहे तब उसमें शिष्य की योग्यता आती है।

ताराप्रदीपे—

आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत्सुधीः।
न हि देवाः प्रसीदन्ति कलौ चान्यविधानतः॥

तथा—

कृते श्रुत्युक्तमार्गः स्यात्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्मतः॥
अशुद्धाः शूद्रकर्माणो ब्राह्मणाः कलिसम्भवाः।
तेषामागममार्गेण सिद्धिर्न श्रौतवर्त्मना॥
मन्त्राणां देवता ज्ञेया देवता गुरुरूपिणी।
तेषां भिदा न कर्त्तव्या यदीच्छेच्छुभमात्मनः॥

ताराप्रदीप के अनुसार कलियुग में आगमोक्त विधान से विद्वान् देवता का अर्चन करे।

कलियुग में दूसरे विधान से देवता प्रसन्न नहीं होते। सतयुग में वैदिक मार्ग से, त्रेतायुग में स्मार्तविधान से, द्वापर में पुराणों में वर्णित मार्ग से और कलियुग में आगमोक्त मार्ग से साधना सफल होती है। कलियुग में ब्राह्मण शूद्र क्रमों से अशुद्ध रहते हैं; इसलिये आगमोक्त मार्ग से ही उन्हें सिद्धि मिलती है, वैदिक मार्ग से सिद्धि नहीं मिलती। मन्त्राक्षरों को देवतास्वरूप माने। देवता को गुरुरूप में देखे। अतः मन्त्र, देवता और गुरु—इन तीनों में भेद नहीं करना चाहिये। भेद करने से शुभता प्राप्त नहीं होती है।

देव्यागमे शिववाक्यम्—

गुरुशय्यासनं यानं पादुकोपानत्पीठकम्।
स्नानोदकं तथा च्छायां लङ्घनं नैव कारयेत्॥
गुरोरग्रे पृथक् पूजामौद्धत्यञ्च विवर्जयेत्।
दीक्षाव्याख्यां प्रभुत्वञ्च गुरोरग्रे परित्यजेत्॥

देव्यागम में शिवजी के वचन हैं कि गुरु की शय्या, आसन, वाहन, पादुका, उपानह, पादपीठ, स्नानजल और छाया को न लाँघे। गुरु के सामने अन्य की पूजा, औद्धत्य, दीक्षाशास्त्र की व्याख्या और प्रभुत्व का प्रदर्शन न करे।

रुद्रयामले—

ऋणदानं तथाऽऽदानं वस्तूनां क्रयविक्रयम्।
न कुर्याद्गुरुणा सार्द्धं शिष्यो भूत्वा कदाचन॥

रुद्रयामल में लिखा है कि शिष्य को गुरु से ऋण का आदान-प्रदान या क्रय-विक्रय नहीं करना चाहिये।

गुरुशब्दार्थः

तन्त्रार्णवे—

गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः।
उकारः शम्भुरित्युक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः॥
गकाराज्ज्ञानसम्पत्ति रेफः पापस्य दाहकः।
उकाराच्छिवतादात्म्यं दद्यादिति गुरुः स्मृतः॥
गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते॥

गुरु शब्द का अर्थ—तन्त्रार्णव के अनुसार 'ग' सिद्धिदाता, रेफ पापदाहक एवं 'उ' स्वयं शिव है। यह त्रितयात्मक गुरु सर्वश्रेष्ठ है। अथवा 'ग' ज्ञान और सम्पत्तिप्रद, रेफ पापदाहक और 'उ' शिवस्वरूपत्वप्रद है। अथवा 'गु' माने अन्धकार एवं 'रु' माने उसे दूर करने वाला अर्थात् गुरु माने अन्धकार को दूर करने वाला।

आश्रमादिभेदेन गुरुनिर्णयः दूरत्वादूरत्वभेदेन गुरुं प्रति कर्तव्यञ्च

कुलचूडामणौ—

उदासीनो ह्युदासीनां वनस्थो वनवासिनः ।
यतीनाञ्च यतिः प्रोक्तो गृहस्थानां गुरुर्गृही ।।
वैष्णवे वैष्णवो ग्राह्यः शैवे शैवस्तथा पुनः ।
शक्तिके त्रितयं विद्याद्दीक्षास्वामी न संशयः ।।

गुरुरपि गृहस्थ एव कुलार्णवे—

सर्वशास्त्रार्थवेत्ता च गृहस्थो गुरुरुच्यते ।।

तथा च कल्पे—

कलत्रपुत्रवान् विप्रो दयालुः सर्वसम्मतः ।
दैवे पित्रेऽरिमित्रे च गृहस्थो देशिको भवेत् ।।

कुलचूडामणौ—

पिता माता तथा भ्राता पितृव्यो मातुलस्तथा ।
येनोपदिष्टस्तन्त्रेऽस्मिन् तं गुरुं समुपासयेत् ।।
न च बालो न वृद्धश्च न खञ्जो न कृशस्तथा ।

इति हयशीर्षात् ।

आश्रमादिभेद से गुरुनिर्णय एवं गुरु के प्रति शिष्य का कर्तव्य—कुलचूड़ामणि के अनुसार उदासीन का उदासीन, वनवासी का वनवासी, यति का यति और गृहस्थ का गृहस्थ ही गुरु होना चाहिये। वैष्णव का वैष्णव, शैव का शैव ही गुरु होना चाहिये। किन्तु शक्तिदीक्षा में शाक्त, वैष्णव और शैव तीनों दीक्षाकर्ता हो सकते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

कल्प के अनुसार पत्नी-पुत्र से युक्त दयालु विप्र; जो देवता, पितर, शत्रु-मित्र में समभाव रखता हो और जो गृहस्थ हो, वही देशिक अर्थात् गुरु होने के योग्य है। कुलचूड़ामणि के अनुसार जो विप्र अपने पिता-माता-भ्राता-चाचा-मामा से उपदिष्ट हो, उसी को गुरु बनाना चाहिये।

हयशीर्ष के अनुसार न बालक, न वृद्ध, न गंजा और न जो दुबला हो, उसी को गुरु बनाना चाहिये।

तथा च नित्यानन्दे—

गुरुं न मर्त्यं बुध्येत यदि बुध्येत तस्य तु ।
न कदाचिद्भवेत् सिद्धिर्न मन्त्रैर्देवपूजनैः ।।

तथा—

एकाग्रमस्थितः शिष्यस्त्रिसन्ध्यं प्रणमेद्‌गुरुम्।
क्रोशमात्रस्थितो भूत्वा गुरुं प्रतिदिनं नमेत्॥
अर्धयोजनतः शिष्यः प्रणमेत् पञ्चपर्वसु।
एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधि॥
दूरदेशस्थितः शिष्यो भक्त्या तत्सन्निधिं गतः।
तत्र योजनसंख्योक्तमासेन प्रणमेद् गुरुम्॥
यदि दूरे च चार्वङ्गि! स्वगुरोर्नगरं भवेत्।
वर्षे वर्षे च कर्त्तव्यं गुरोश्चरणवन्दनम्॥

एतच्च एकधा दक्षिणायने एकधा उत्तरायणे कर्त्तव्यम्।

शिष्य-कर्तव्य—नित्यानन्द के अनुसार गुरु को मर्त्य न समझे। यदि उसे मर्त्य समझता है तो उस शिष्य को सिद्धि कभी नहीं मिलती। उसका मन्त्रदेवतापूजन निष्फल होता है।

एकाग्र मन से शिष्य गुरु को तीनों सन्ध्याओं (प्रातः, मध्याह्न, दोपहर) में प्रणाम करे। गुरु से एक कोश की दूरी पर स्थित शिष्य प्रतिदिन गुरु को प्रणाम करे। आधा योजन अर्थात् दो कोश की दूरी पर स्थित शिष्य पाँचों पर्वों में अर्थात् अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति में गुरु को प्रणाम करे। एक योजन से बारह योजन के भीतर हो तो योजनसंख्यक महीनों के बाद गुरु के निकट जाकर शिष्य प्रणाम करे। यदि इससे भी अधिक दूर गुरु का निवास हो तो वर्ष में दो बार—एक बार उत्तरायण में और एक बार दक्षिणायन में जाकर गुरुदेव को प्रणाम करना चाहिये।

पित्रादितो दीक्षानिषेधः

योगिनीतन्त्रे—

पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयात्तथा मातामहस्य च।
सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य वा॥

पिता आदि से दीक्षा का निषेध—योगिनीतन्त्र के अनुसार पिता से, नाना से, सहोदर अनुज से और शत्रु-पक्ष के आश्रित से मन्त्र-ग्रहण न करे।

गणेशविमर्शिण्याम्—

यतेर्दीक्षा पितुर्दीक्षा दीक्षा च वनवासिनः।
विविक्ताश्रमिणो दीक्षा न सा कल्याणदायिका॥

गणेशविमर्शिनी के अनुसार यति से, पिता से, वनवासी से और विविक्ताश्रमी से दीक्षा लेना कल्याणकारक नहीं होता।

रुद्रयामले—

न पत्नीं दीक्षयेद्भर्त्ता न पिता दीक्षयेत् सुताम्।
न पुत्रश्च तथा भ्राता भ्रातरं न च दीक्षयेत्॥
सिद्धमन्त्रो यदि पतिस्तदा पत्नीं स दीक्षयेत्।
शक्तित्वेन वरारोहे न च सा पुत्रिका भवेत्॥

इत्यादिनिषेधवचनादेभ्यो मन्त्रं न गृह्णीयात् इत्यर्थः। इदन्तु सिद्धेतरविषयम्। सिद्धमन्त्रे न दुष्यतीति वचनात्।

यतेरपि दीक्षोक्ता शक्तियामले—

तीर्थाचारयुतो मन्त्री ज्ञानवान् सुसमाहितः।
नित्यनिष्ठो यतिः ख्यातो गुरुः स्याद्भौतिकेऽपि च॥

रुद्रयामल के अनुसार पति पत्नी को, पिता पुत्र और कन्या को एवं भाई सहोदर को दीक्षा न प्रदान करे। पति यदि मन्त्रसिद्ध हो तो वह पत्नी को दीक्षा दे सकता है; किन्तु पत्नी के प्रति पुत्रिकावत् व्यवहार न करे। पत्नी को शक्ति के रूप में ग्रहण करे। इसके अनुसार मन्त्रग्रहण का निषेध है।

यह निषेध सिद्धेतर मन्त्रों के लिये हैं। सिद्ध मन्त्रों में यह दोष नहीं लगता। शक्तियामल के अनुसार यति से भी दीक्षा ग्राह्य है। यदि यति तीर्थाचार से युक्त मन्त्रज्ञ हो, सुसमाहित ज्ञानी हो, नित्यनिष्ठ विख्यात हो। ऐसा गुरु भी योग्य होता है।

तथा च सिद्धयामले—

यदि भाग्यवशेनैव सिद्धविद्यां लभेत् प्रिये।
तदैव तान्तु दीक्षेत त्यक्त्वा गुरुविचारणम्॥

तथा—

प्रमादाच्च तथाऽज्ञानात् पितुर्दीक्षां समाचरेत्।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनर्दीक्षां समाचरेत्॥

पितुरित्युपलक्षणम् तथा मातामहादीनामपि। प्रायश्चित्तन्तु अयुतसावित्रीजपः सर्वत्र दर्शनात्।

सिद्धयामल के अनुसार यदि भाग्यवश सिद्ध विद्या प्राप्त हो तब बिना गुरु-विचार के दीक्षा ग्राह्य है। यदि प्रमादवश या अज्ञानतावश पिता पुत्र को दीक्षा देता है तो पुत्र प्रायश्चित्त करके फिर से दीक्षा ग्रहण करे।

यहाँ पिता उपलक्षणमात्र है। मातामह आदि से भी दीक्षा ग्रहण करने के बाद दस हजार गायत्री-जप से प्रायश्चित्त करना चाहिये।

शङ्खः—

दशसाहस्र्यजापेन सर्वकल्मषनाशिनी।

तथा मत्स्यसूक्ते—

निर्वीर्यञ्च पितुर्मन्त्रं शैवे शाक्ते न दूष्यति।

इति वचनं कौलिकमन्त्रदीक्षापरम्। अत्र हेतुः योगिनीतन्त्रे शक्त्यादि-विद्यामधिकृत्य दीक्षानिषेधात् (तथा च विष्णुमन्त्रस्तु पित्रादिभ्यो गृहीतव्यः इत्यर्थः)। यद्वा शाक्ते तारादिविद्यायां मत्स्यसूक्ते तामधिकृत्य तथाप्रतिपादनात्। तथा च—निजकुलतिलकाय ज्येष्ठपुत्राय दद्यादित्यादि।

शङ्ख के अनुसार भी दस हजार गायत्री-जप से सभी कल्मषों का विनाश होता है मत्स्यसूक्त के मत से पिता से प्राप्त निर्वीर्य मन्त्र शैवों और शाक्तों के लिये दोषयुक्त नही होते। कौलिक मन्त्र दीक्षा के वचन श्रेष्ठ हैं। इसका कारण योगिनीतन्त्र के वचन है कि कौलिक मार्ग मे पिता से भी विष्णुमन्त्र की दीक्षा ग्राह्य है।

मत्स्यसूक्त के अनुसार तारा आदि विद्याओं के मन्त्र पिता आदि से भी ग्राह्य है पिता अपने कुलतिलक ज्येष्ठ पुत्र को मन्त्र की दीक्षा दे सकता है।

श्रीक्रमेऽपि—

मनुर्विमृश्य दातव्यो ज्येष्ठपुत्राय धीमते।

महातीर्थे उपरागे सति सर्वत्र न दोषः। तथा च विष्णुमन्त्रमधिकृत्य—

साधु पृष्टं त्वया विप्र वक्ष्यामि सकलन्तव।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं वसिष्ठाय महात्मने।।
वसिष्ठोऽपि स्वपुत्राय मत्पित्रे दत्तवान् स्वयम्।
प्रसन्नहृदयः स्वच्छः पिता मे करुणानिधिः।।
कुरुक्षेत्रे महातीर्थे सूर्यपर्वणि दत्तवान्।

इत्यादि वैशम्पायनसंहितायां शौनकं प्रति व्यासवचनम्।

श्रीक्रम के मत से महातीर्थ और ग्रहणकाल मे अपने ज्येष्ठ पुत्र को मन्त्र देने मे कोई दोष नहीं है। विष्णुमन्त्र में अधिकृत्यता के बारे कथन है कि तुम्हारा प्रश्न उत्तम है, हे विप्र ! मै तुझे सब कुछ बतलाता हूँ पूर्व काल मे महात्मा वशिष्ठ से ब्रह्मा ने कहा था अर्थात् मन्त्र दिया था।

ब्रह्मा से प्राप्त मन्त्र को वशिष्ठ ने भी स्वयं ही अपने पुत्र को दिया था। प्रसन्न-हृदय मेरे पिता ने भी करुणावश सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र के महातीर्थ मे मुझे मन्त्र दिया था। वैशम्पायनसंहिता मे शौनक से व्यास ने इस प्रकार कहा था।

योगिनीतन्त्रे—

> निर्वीर्यञ्च पितुर्मन्त्रं तथा मातामहस्य च।
> स्वप्नलब्धं स्त्रिया दत्तं संस्कारेणैव शुध्यति॥

यत्तु

> साध्वी चैव सदाचारा गुरुभक्ता जितेन्द्रिया।
> सर्वमन्त्रार्थतत्त्वज्ञा सुशीला पूजने रता।
> गुरुयोग्या भवेत्सा हि विधवा परिवर्जिता।
> स्त्रियो दीक्षा शुभा प्रोक्ता मातुश्चाष्टगुणाः स्मृताः।

इदन्तु गुरोरुपासितमन्त्रपरम्।

योगिनीतन्त्र के अनुसार पिता और मातामह से प्राप्त निर्वीर्य [illegible] स्वप्नलब्ध और स्त्रीप्रदत्त मन्त्र भी संस्कारित होने पर शुद्ध हो [illegible] भी गुरु हो सकती है; यदि वह साध्वी, सदाचारिणी, गुरुभक्त [illegible] रखने वाली, सभी मन्त्रार्थतत्त्वों को जानने वाली, सुशीला, सदा पूजा में लगी रहती हो किन्तु ऐसी विधवा गुरु नहीं हो सकती। स्त्री-गुरु से दीक्षा लेने से शुभ फल मिलता है। माता से उपासित मन्त्र की दीक्षा मिलने पर वह अठगुना अधिक फलदायी होता है। इस प्रकार से प्राप्त गुरुमन्त्र श्रेष्ठ होते हैं।

तथा भैरवीतन्त्रे—

> स्वीयमन्त्रोपदेशे तु न कुर्याद् गुरुचिन्तनम्।

मातुरित्युपासितेऽष्टगुणम्। अनुपासिते शुभफलदमित्यर्थः। सिद्धमन्त्रविषयं वा इति केचित्। वस्तुतस्तु योगिनीतन्त्रे स्त्रीपदं विधवापरं एकवाक्यताबलात्।

> विधवायाः सुतादेशात् कन्यायाः पितुराज्ञया।
> नाधिकारो यतो नार्य्याः सधवा भर्त्तुराज्ञया॥

नाधिकार इति स्वातन्त्र्येणाधिकारस्य।

> स्त्रीणां गर्भवतीनाञ्च दीक्षायां नैव दूषणम्।
> न कुर्याद्दशमे मासि कृत्वा च नारकी भवेत्॥

भैरवीतन्त्र के मत से अपने द्वारा उपासित मन्त्र की दीक्षा लेने के समय गुरु-विचार नहीं करना चाहिये। माता के द्वारा उपासित मन्त्र अठगुणा अधिक फलप्रद होता है। सिद्ध मन्त्र भी इतने ही फलप्रद होते हैं। योगिनीतन्त्र के मत मे वस्तुस्थिति यह है कि विधवा स्त्री से मन्त्रदीक्षा नहीं लेनी चाहिये। स्त्री-गुरुओ मे विधवा अपने पुत्र की अनुमति से, कुमारी कन्या अपने पिता की आज्ञा से और विवाहिता अपने पति की अनुमति से मन्त्रदीक्षा

देने की अधिकारिणी होती है। स्वतन्त्र रूप में नारियों को मन्त्रदीक्षा देने का अधिकार नहीं है। गर्भवती स्त्री से दीक्षा लेने में दोष नहीं है, किन्तु दसवें महीने में दीक्षा लेने से नरक होता है।

स्वप्नलब्धमन्त्रे यदि सद्गुरु प्राप्नोति तदा तत एव तन्मन्त्रं गृह्णीयात्, न चेत् जलपूर्णकलशे गुरोः प्राणप्रतिष्ठां विधाय वटपत्रे कुंकुमेन लिखितं मन्त्रं तत्कलशे प्रक्षिप्य उत्तोल्य मन्त्रं गृह्णीयादित्यर्थः। तथाहि—

स्वप्नलब्धे च कलशे गुरोः प्राणान् निवेशयेत्।।
वटपत्रे कुंकुमेन लिखित्वा ग्रहणे शुभम्।
ततः सिद्धिमवाप्नोति चान्यथा विफलं भवेत्।

इदन्तु सद्गुरोरभावे तस्मादेव मन्त्रं गृह्णीयात्। 'स्वप्ने तु नियमो न ही'ति नारदवचनात्। तत्र सिद्धादिनियमो नास्ति।

स्वप्नलब्ध मन्त्र यदि सद्गुरु से प्राप्त हो तो उसे ग्रहण करना चाहिये। सद्गुरु का अभाव होने पर जलपूर्ण कलश में गुरु की प्राणप्रतिष्ठा करके वटपत्र पर कुंकुम से मन्त्र लिखे और उस कलश के जल में इस पत्र को डाल दे। फिर उक्त वटपत्र-सहित मन्त्र को ऊपर उठाते हुए स्वयं उस मन्त्र को ग्रहण करे, इससे मन्त्र की सिद्धि होती है, अन्यथा वह निष्फल रहता है। नारद के अनुसार स्वप्नलब्ध मन्त्र में कोई नियम नहीं है। इसमें सिद्धादि विषय विचारणीय नहीं है।

तथा विद्याधराचार्यधृतं जाबालवचनम्—

मध्यदेशकुरुक्षेत्र-नट-कोङ्कणसम्भवाः।
अन्तर्वेदिप्रतिष्ठाना आवन्त्याश्च गुरूत्तमाः।।

मध्यदेश आर्यावर्त्तः।

गौडाः शाल्वाः सुराष्ट्रैव मागधाः केरलास्तथा।
कोशलाश्च दशार्णाश्च गुरवः सप्त मध्यमाः।।
कर्णाटनर्मदाराष्ट्रकच्छतीरोद्भवास्तथा।
कालिन्दाश्च कलम्बाश्च काम्बोजाश्चाधमा मताः।।

विद्याधराचार्य द्वारा कथित जाबाल के वचनों के अनुसार मध्य देश, कुरुक्षेत्र, नट, कोकण, सम्भूत, अन्तर्वेदि प्रतिष्ठित और अवन्ति के गुरु श्रेष्ठ होते हैं। गौड़देशीय, शाल्वदेशीय, सौराष्ट्रदेशीय, मगधदेशीय, केरलदेशीय, कोशलदेशीय, दशार्णदेशीय कुल सात देशीय गुरु मध्यम माने गये हैं। कर्णाटक, नर्मदा, राष्ट्रकच्छ-तटसम्भूत, कलिन्द, कलम्ब और काम्बोज देशीय गुरु अधम माने गये हैं।

दीक्षाविचारादिनिर्णय

दीक्षां विना जपस्य दुष्टत्वात् प्रथमं सा निरूप्यते—

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात्पापस्य संक्षयम् ।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥

सर्वाश्रमेषु दीक्षाया आवश्यकत्वम् । तथा च—

दीक्षामूलं जपं सर्वं दीक्षामूलं परं तपः ।
दीक्षामाश्रित्य निवसेद्यत्र कुत्राश्रमे वसन् ॥
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः ।
न भवन्ति प्रिये तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ॥
देवि दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ॥
अदीक्षितोऽपि मरणे रौरवं नरकं व्रजेत् ।
अदीक्षितस्य मरणे पिशाचत्वं न मुञ्चति ।
तस्माद्दीक्षां प्रयत्नेन सदा कुर्वीत तान्त्रिकात् ॥

तथा च नवरत्नेश्वरे—

सर्वासामपि दीक्षाणां मुक्तिः फलमखण्डितम् ।
अविरोधाद्भवन्त्येव प्रासङ्गिक्यस्तु भुक्तयः ॥
उपपातकलक्षाणि महापातककोटयः ।
क्षणाद्दहति देवेशि दीक्षा हि विधिना कृता ॥
कल्पे दृष्ट्वा तु मन्त्रं वै यो गृह्णाति नराधमः ।
मन्वन्तरसहस्रेषु निष्कृतिर्नैव जायते ॥
नादीक्षितस्य कार्यं स्यात्तपोभिर्नियमैर्व्रतैः ।
न तीर्थगमनेनाऽपि न च शारीरयन्त्रणैः ॥

मत्स्यसूक्ते—

अदीक्षितानां मर्त्यानां दोषं शृणु वरानने! ।
अन्नं विष्ठासमं तस्य जलं मूत्रसमं स्मृतम् ।
तत्कृतं तस्य वा श्राद्धं सर्वं याति ह्यधोगतिम् ॥

ततः—

सद्गुरोराहिता दीक्षा सर्वकर्माणि साधयेत् ।

दीक्षा-विचार—दीक्षा के विना मन्त्रजप दूषित होता है। दीक्षा से दिव्य ज्ञान का

लाभ और पापों का नाश होता है। इसी से इसका नाम दीक्षा है, क्योंकि जप-तप आदि का मूल दीक्षा ही है अतः किसी भी आश्रम में रहने वाले मनुष्य को दीक्षा का आश्रय लेना ही पड़ता है। अदीक्षित की जप-पूजादि क्रिया पत्थर पर बीज बोने के समान व्यर्थ होती है दीक्षाविहीन को न तो सद्गति मिलती है और न ही सिद्धि। अतः सभी को गुरु से दीक्षा प्राप्त करनी चाहिये। अदीक्षितों को मरणोपरान्त रौरव नरक में दु:ख भोगना पड़ता है अदीक्षित को मृत्यु के बाद पिशाचत्व से मुक्ति नहीं मिलती, इसीलिये यत्नपूर्वक तान्त्रिक दीक्षा लेना परम कर्तव्य है।

नवरत्नेश्वर के मत से सभी प्रकार की दीक्षा से मुक्ति मिलती है, साथ ही भोग भी सम्पन्न होता है। विधिपूर्वक दीक्षा लेने से असंख्य पाप तुरन्त भस्म हो जाते हैं। गुरु के पास न जाकर जो ग्रन्थ देखकर जप करता है, उसकी एक हजार मन्वन्तर तक सद्गति नहीं होती है। अदीक्षित व्यक्ति का कोई भी कार्य यथा—तपस्या, व्रत, नियम आदि तीर्थयात्रा एवं शारीरिक श्रम से सिद्ध नहीं होता। अदीक्षित के द्वारा एवं अदीक्षित के लिये किया गया श्राद्ध निष्फल होता है, क्योंकि अदीक्षित का अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है अदीक्षित के द्वारा किये गये श्राद्ध से पितरों को अधोगति मिलती है। इसीलिये सद्गुरु से दीक्षा लेना परमावश्यक है। दीक्षा लेकर ही सभी कर्मों का साधन करना चाहिये।

शूद्रस्य निषिद्धमन्त्रा

तन्त्रान्तरे—

> **प्रणवाद्यं न दातव्यं मन्त्रं शूद्राय सर्वथा।**
> **आत्ममन्त्रं गुरोर्मन्त्रं मन्त्रञ्च जपसंज्ञकम्॥**
> **स्वाहाप्रणवसंयुक्तं शूद्रे मन्त्रं ददद्द्विजः।**
> **शूद्रो निरयमाप्नोति ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्॥**

शूद्रों के लिये निषिद्ध मन्त्र—प्रणव और प्रणवयुक्त मन्त्र शूद्र को प्रदान न करे। जो ब्राह्मण आत्ममन्त्र, गुरुमन्त्र, अजपा मन्त्र हंस स्वाहा और प्रणवयुक्त मन्त्र शूद्र को देता है, उसकी अधोगति होती है। उसके साथ शूद्र भी नरकगामी होता है।

श्रुतिरपि—सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्रो यदि जानीयात्स मृतोऽधोगच्छति।

श्रुति के अनुसार वैदिक गायत्री, प्रणव एवं लक्ष्मीमन्त्र (श्री) स्त्री और शूद्र के लिये निषिद्ध है।

विशेषमाह वाराहीये—

> **गोपालस्य मनुर्देयो महेशस्य च पादजे।**

तत्पत्न्याश्चापि सूर्यस्य गणेशस्य मनुस्तथा।
एषां दीक्षाधिकारी स्यादन्यथा पापभाग्भवेत्॥

वाराहीतन्त्र में लिखा है कि शूद्र को गोपाल, महेश्वर, दुर्गा, सूर्य और गणेश के मन्त्रों को ग्रहण करने का ही अधिकार है। अन्य मन्त्र उनके लिये निषिद्ध है। अन्य मन्त्र ग्रहण से पापभाजन होना पड़ता है।

मन्त्राणां सिद्धादिविचार.

तत्राप्यनुकूलं मन्त्रं दीक्षयेत्।

मननात्त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्त्तितः॥

तथा च—

स्वतारराशिकोष्ठानामनुकूलान् भजेन्मनून्॥

मन्त्रों का सिद्धादि विचार—जिन मन्त्रों को ग्रहण करने का अधिकार हो, उन्हीं में से अनुकूल मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। मन्त्र के मनन, स्मरण, उच्चारण से संसार से उद्धार होता है। इसी से इसे मन्त्र कहते हैं। अपनी राशिकोष्ठ नाम के अनुकूल मन्त्र का जप करना चाहिये।

सिद्धसारस्वते—

नृसिंहार्कवराहाणां प्रासादप्रणवस्य च।
सपिण्डाक्षरमन्त्राणां सिद्धादीन्नैव शोधयेत्॥

सिद्धसारस्वत में लिखा है कि नृसिंह, सूर्य, वराह के मन्त्र और प्रासाद बीज हौं, प्रणव एवं कूटमन्त्र अर्थात् ठ्रौं बीजघटित मन्त्र के सम्बन्ध में सिद्धादि विचार नहीं करना चाहिये।

वाराहीतन्त्रे—

ताराचक्रं राशिचक्रं नामचक्रं तथैव च।
तत्र चेत्सगुणो मन्त्रो नान्यच्चक्रं विचिन्तयेत्॥

इति तु प्रधानतया बोद्धव्यम्। तथा च—

धनिमन्त्रं न गृह्णीयादकुलञ्च तथैव च।

इत्यादौ तथादर्शनात्तच्चक्रविचारस्यावश्यकत्वात् प्रथमं तन्निरूप्यते—

स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते मालामन्त्रे च त्र्यक्षरे।
काली-तारामणौ मन्त्री तथा छिन्नमनावपि।
वैदिकेषु च सर्वेषु सिद्धादीन्नैव शोधयेत्॥

मालामन्त्रस्तु वाराहीये—

विंशत्यर्णाधिका मन्त्रा मालामन्त्राः प्रकीर्त्तिताः।
नपुंसकस्य मन्त्रस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥
हंसस्याष्टाक्षरस्यापि तथा पञ्चाक्षरस्य च।
एकद्वित्र्यादिबीजस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥

तथा—

एकाक्षरस्य मन्त्रस्य मालामन्त्रस्य पार्वति।
वैदिकस्य च मन्त्रस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥
पुंमन्त्रा हुंफडन्ताः स्युर्द्विठान्तास्तु स्त्रियो मताः।
नपुंसका नमोऽन्ताः स्युरित्युक्ता मनवस्त्रिधा।
एतच्छून्या महाविद्या महाशब्देन नीयते ॥

वाराहीतन्त्र के अनुसार सगुण मन्त्रो के सम्बन्ध मे ताराचक्र, राशि-चक्र और नाभचक्र (ऋणी-धनीचक्र) का विचार करना चाहिये। धनी और अकुल मन्त्र ग्रहणीय नही है। अतः ऋणी-धनी तथा कुलाकुल चक्र का विचार आवश्यक है। स्वप्न में प्राप्त मन्त्र स्त्री-गुरु से प्राप्त मन्त्र, त्र्यक्षर मन्त्र, काली मन्त्र, तारा मन्त्र, छिन्नमस्तिका मन्त्र और सभी प्रकार के वैदिक मन्त्रो के विषय में सिद्धादि विचार नहीं करना चाहिये। जिस मन्त्र के अन्त में 'हूँ फट्' होता है, वह पुरुषमन्त्र होता है। जिसके अन्त मे 'स्वाहा' रहता है, उसे स्त्रीमन्त्र कहते हैं। जिसके अन्त में नमः हो, उसे नपुसक मन्त्र कहते हैं। 'महाविद्या' इन सबसे रहित होता है। इसी से उसे महामाया कहा जाता है।

मालिनीविजये—

अथ वक्ष्याम्यहं या या महाविद्या महीतले।
दोषजालैरसंस्पृष्टास्ताः सर्वा हि फलैः सह ॥
काली नीला महादुर्गा त्वरिता छिन्नमस्तका।
वाग्वादिनी चान्नपूर्णा तथा प्रत्यङ्गिरा पुनः ॥
कामाख्यावासिनी बाला मातङ्गी शैलवासिनी।
इत्याद्याः सकला देव्याः कलौ पूर्णफलप्रदाः ॥
सिद्धमन्त्रतया नात्र युगसेवापरिश्रमः।
तथा चैता महाविद्याः कलिदोषान्न बाधिताः ॥

मालिनीविजय तन्त्र के अनुसार काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्तिका, धूमावती, बगला, मातगी और कमला—इन दश महाविद्याओं के मन्त्र ग्रहण करने के समय सिद्धादि विचार, नक्षत्र-चक्रादि विचार, कालादि शोधन और अरि-विचार की

आवश्यकता नही है। ये सिद्ध विद्यायें हैं। इनकी उपासना में कुछ भी असाध्य नही रहता। इनके अतिरिक्त महादुर्गा, त्वरिता, वाग्वादिनी, अन्नपूर्णा प्रत्यंगिरा, कामाख्या वाला शैलवासिनी के मन्त्र कलियुग में पूर्ण फलप्रदायक हैं। ये भी सिद्ध मन्त्र हैं। इनमें कलिदोष बाधक नहीं होता। इनके लिये युगनियम नहीं है।

तथा च मुण्डमालातन्त्रे—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ।।
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः ।।
नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नक्षत्रादिविचारणा ।
कालादिशोधनं नास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ।।
सिद्धिविद्यातया नात्र युगसेवापरिश्रमः ।
नास्ति किञ्चिन्महादेवि दुःखसाध्यं कदाचन ।।

इत्यादि वचनादेषु विचारो नास्ति। वस्तुतस्तु इदं प्रशंसापरम्। सर्वत्र विचारस्यावश्यकत्वं दुरदृष्टवशात् कदाचिद्वैरिमन्त्रस्य स्वप्नादौ प्राप्त्या तद्दोषस्य दृष्टत्वादिति साम्प्रदायिकाः।

मुण्डमालातन्त्र के मत से काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातंगी और कमला के मन्त्रों में सिद्धादि, नक्षत्र-चक्रादि विचार, कालादि शोधन आदि विचार नहीं करना चाहिये। ये सिद्ध विद्यायें हैं। इनकी उपासना पूर्ण फलप्रद होती है.

साम्प्रदायिकों के मत से उक्त वचन को प्रशंसापरक मानकर सभी मन्त्रों के सम्बन्ध में मन्त्रविचार करना चाहिये। उदाहरणार्थ स्वप्न में प्राप्त मन्त्र के लिये विचार अनावश्यक है, परन्तु दुर्दैव होने से स्वप्न में शत्रुमन्त्र भी प्राप्त हो सकता है। अतएव मन्त्रविचार सर्वत्र अपेक्षित है।

कुलाकुलचक्रम्

कुलाकुलस्य भेदं हि वक्ष्यामि मन्त्रिणामिह ।

तथा निबन्धे—

वाय्वग्निभूजलाकाशाः पञ्चाशल्लिपयः क्रमात् ।
पञ्चह्रस्वाः पञ्चदीर्घा बिन्द्वन्ताः सन्धिसम्भवाः ।
कादयः पञ्चशः यक्षलसहान्ताः प्रकीर्त्तिताः ।।

तथा च -अ आ ए क च ट त प य षाः मारुताः। इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्षा आग्नेयाः। उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल ळाः पार्थिवाः। ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व सा वारुणाः। ऌ ॡ अं ङ ञ ण न म श हा नाभसाः।

साधकस्याक्षरं पूर्वं मन्त्रस्यापि तदक्षरम्।
यद्येकभूतदैवत्यं जानीयात् स्वकुलं हितम्॥
भौमस्य वारुणं मित्रं आग्नेयस्यापि मारुतम्।
मारुते पार्थिवानाञ्च आग्नेयञ्चाम्भसां रिपुः॥
पार्थिवानाञ्चेति चकारात् आग्नेयं पार्थिवानां रिपुः।
नाभसं सर्वमित्रं स्याद्विरुद्धं नैव शीलयेत्॥

तथा च रुद्रयामले—

पार्थिवे वारुणं मित्रं तैजसं शत्रुरीरितम्।
ऐन्द्रवारुणयोः शत्रुर्मारुतः परिकीर्त्तितः।

इति राघवभट्टधृतवचनात् जलमारुतयोः शत्रुता।

मित्रे सिद्धिः समाख्याता उदासीने न किञ्चन।
मृत्युर्व्याधिरमित्रे च स्वकुले सिद्धिरुत्तमा॥

कुलाकुल चक्र इस श्लोक के अनुसार कुलाकुल चक्र निम्न प्रकार का है। इस चक्र के अनुसार यदि मन्त्र लेने वाले के नाम का पहला अक्षर और लिये जाने वाले मन्त्र का पहला अक्षर एक ही भूत के हों अर्थात एक ही कोष्ठ में हो तो उस मन्त्र को 'स्वकुल'; अन्यथा 'अकुल' समझा जाता है।

कुलाकुल चक्र

वायु	अग्नि	भूमि	जल	आकाश
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ल	स	ह

स्वकुल का मन्त्र शुभ होता है। एक भूत न होकर यदि उपर्युक्त दोनों अक्षर परस्पर मित्र हों तो भी वह मन्त्र शुभ समझना चाहिये। मित्र शत्रु की पहचान के लिये यह स्मरणीय है कि जलवर्ण, आकाशवर्ण के और वायुवर्ण अग्निवर्ण के मित्र हैं। वायुवर्ण भूवर्ण के और अग्निवर्ण जलवर्ण तथा भूवर्ण के शत्रु हैं। आकाश वर्ण सब वर्णों का मित्र है।

रुद्रयामल के अनुसार जलवर्ण भूवर्ण का मित्र है और वायुवर्ण का शत्रु है। मित्रवर्ण होने से सिद्धि की प्राप्ति होती है और शत्रुवर्ण होने से व्याधि तथा मृत्यु होती है। उदासीन होने से कुछ नही होता। इसे पूर्ण रूप से समझने के लिये एक उदाहरण दिया जा रहा

हैं। रमेश को ईशान मन्त्र लेना है। उपासक के नाम का पहला अक्षर 'र' है और मन्त्र का पहला अक्षर 'ई' है। ये दोनो 'र' और 'ई' अग्नि के कोष्ठक में हैं अतः एक भूत हुए रमेश के लिये ईशान मन्त्र स्वकुल अर्थात् शुभ है। इसी प्रकार यदि रमेश को 'ह' मन्त्र लेना हो तो 'र' का दैवत अग्नि है और 'ह' का आकाश। ये दोनो भूत परस्पर मित्र हैं। इसलिये रमेश हरमन्त्र भी ले सकता है।

राशिचक्रम्

यथा आगमकल्पद्रुमे—

रेखाद्वयं पूर्वपरेण कुर्यात्तन्मध्यतो याम्यकुबेरभेदात्।
एकैकमीशाननिशाकरे तु हुताशवाय्वोर्विलिखेत्ततोऽर्णान् ।।
वेदाग्निवह्नियुगलश्रवणाक्षिसंख्यान् पञ्चेषुवाणशरपञ्चचतुष्टयार्णान् ।
मेषादितः प्रविलिखेत्सकलास्तु वर्णान् कन्यागतान् प्रविलिखेदथ यादिवर्णान् ।।

शारदायाम्—

बालं गौरं खुरं शोनं शमीशोभेति राशिषु ।
क्रमेण भेदिता वर्णाः कन्यायां शादयः स्मृताः ।।

तेन अ आ इ ई मेषः। उ ऊ ऋ वृषः। ॠ ऌ ॡ मिथुनम्। ए ऐ कर्कटः। ओ औ सिंहः। अं अः श ष स ह ल क्षः कन्या। कवर्गस्तुला। चवर्गो वृश्चिकः। टवर्गो धनुः। तवर्गो मकरः। पवर्गः कुम्भः। यवर्गो मीनः। स्वराशीनामनुकूलं मन्त्रं भजेत्। तथा च 'स्वतारराशिकोष्ठानामनुकूलान् भजेन्मनूनि'ति नारदवचनात्।

राशीनां शुद्धता ज्ञेया त्यजेच्छक्रं मृतिं व्ययम् ।
स्वराशेर्मन्त्रराश्यन्तं गणनीयं विचक्षणैः ।।

यदा तु स्वराशेरज्ञानं तदा साधकनामाद्यक्षरसम्बन्धिनं राशिं गृहीत्वा गणयेत् । नारायणीये —

अज्ञाते राशिनक्षत्रे नामाद्यक्षरदर्शनात् ।
साध्यस्याक्षरराश्यन्तं गणयेत् साधकाक्षरात् ।।

इति रामार्चनचन्द्रिकाधृतत्वाच्च ।

तन्त्रराजे—

तेन मन्त्राद्यवर्णेन नाम्नश्चाद्यक्षरेण च ।
गणयेद्यदि षष्ठं साध्यष्टमं द्वादशन्तु वा ।
रिपुर्मन्त्राद्यवर्णः स्यात्तेन तस्याहितं भवेत् ।।

रामार्चनचन्द्रिकायाम्—

एकपञ्चनवकान्धवाः स्मृता द्वौ च षष्ठदशमाश्च सेवकाः ।
वह्निरुद्रमुनयस्तु पोषका द्वादशाष्टचतुरस्तु घातकाः ॥

चतुरस्तु घातका इति विष्णुविषयम्। रामार्चनचन्द्रिकाधृतत्वाच्च शक्त्यादौ षष्ठं वर्जनीयम्;

षष्ठाष्टमद्वादशानि वर्जनीयानि यत्नतः ।

इति वचनात् तन्त्रराजधृतत्वाच्च । तन्त्रान्तरे द्वादशराशीनामियं संज्ञा नामानुरूपं फलम् —

लग्नं धनं भ्रातृबन्धुपुत्रशत्रुकलत्रकम् ।
मरणं धर्मकर्मायव्यया द्वादशराशयः ॥
नामानुरूपमेतेषां शुभाशुभफलं लभेत् ।

वैष्णवे तु बन्धुस्थाने शत्रुः शत्रुस्थाने बन्धुरिति पाठः।

लग्ने सिद्धिस्तथा नित्यं धने धनसमृद्धिदम् ।
भ्रातरि भ्रातृवृद्धिः स्याद्बान्धवे बान्धवप्रियः ॥
पुत्रे पुत्रविवृद्धिः स्याच्छत्रौ शत्रुविवर्द्धनम् ।
कलत्रे मध्यमा प्रोक्ता मरणे मरणं भवेत् ॥
धर्मे धर्मविवृद्धिः स्यात्सिद्धिदः कर्मसंस्थितः ।
आये च धनसम्पत्तिर्व्यये च सञ्चितव्ययः ॥

राशिचक्र—आगमकल्पद्रुमोक्त श्लोक के अनुसार राशिचक्र निम्न प्रकार का होता है—

मिथुन ऋ ऌ ॡ / वृष	मेष अ आ इ ई	मीन य र ल व श / कुम्भ
कर्क ए ऐ	राशिचक्र	मकर त थ द ध न
सिंह ओ औ / कन्या अं अः ष स ह	तुला क ख ग घ ङ	वृश्चिक

अपनी राशि के नामाक्षर के अनुकूल राशि के मन्त्र की उपासना करनी चाहिये और

अपने नक्षत्रराशि कोष्ठ के नामानुकूल मन्त्र लेना चाहिये, ऐसा नारद का वचन है इस चक्र से पहले मन्त्र की राशि निश्चित करे। यदि अपनी जन्मराशि ज्ञात न हो तो अपने पुकारनाम के प्रथम अक्षर से अपनी राशि निश्चित करे फिर अपनी राशि से मन्त्र की राशि तक गिनकर फलाफल जान लेना चाहिये।

तन्त्रराजतन्त्र के अनुसार यदि मन्त्रराशि अपनी राशि से छठे, आठवें या बारहवें पड़े तो उसे शत्रु-मन्त्र माना जाता है उसे लेने से अमंगल होता है। यदि पहले, पाँचवें या नवें पड़े तो उसे शुभ माना जाता है। तीसरे, सातवें, ग्यारहवें होने में पुष्टिदायक होता है। चौथे, आठवें और बारहवें होने से घातक माना जाता है।

तन्त्रान्तर मे लिखा है कि बारह राशियो के नाम के अनुसार ही उनका फल होता है। कुण्डली मे बारह भाव के नाम लग्न, तन, धन, भ्रातृ, मातृ, पुत्र, शत्रु, कलत्र, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय, व्यय हैं। इनके नाम के अनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त होते हैं। लग्न में सिद्धि, धन में धन-वृद्धि, भ्रातृ में भ्रातृ-वृद्धि, बन्धुस्थान मे बन्धुस्नेह प्राप्त होता है पुत्रस्थान से पुत्रप्राप्ति होती है। शत्रुस्थान से शत्रुवृद्धि होती है। पत्नी-स्थान मध्यम माना गया है मरणस्थान से मृत्यु होती है। धर्मस्थान मे धर्म मे वृद्धि होती है। कर्मस्थान म कर्म में सिद्धि होती है। आयस्थान मे धन-सम्पत्ति मिलती है। व्ययस्थान में सञ्चित द्रव्य का व्यय होता है।

नक्षत्रचक्रम्

अ आ अश्विनी देवः। इ भरणी मानुषः। ई उ ऊ कृत्तिका राक्षसः। ऋ ॠ ऌ ॡ रोहिणी मानुषः। ए मृगशिरो देवः। ऐ आर्द्रा मानुषः। ओ औ पुनर्वसुर्देवः। क पुष्यो देवः खग अश्लेषा राक्षसः घ ङ मघा राक्षसः। च पूर्वफल्गुनी मानुषः। छ ज उत्तरफल्गुनी मानुषः। झ ञ हस्तो देवः। ट ठ चित्रा राक्षसः। ड स्वाती देवः। ढ ण विशाखा राक्षसः। त थ द अनुराधा देवः। ध ज्येष्ठा राक्षसः। न प फ मूलो राक्षसः। ब पूर्वाषाढा मानुषः। भ उत्तराषाढा मानुषः। म श्रवणा देवः। य र धनिष्ठा राक्षसः। ल शतभिषा राक्षसः। व श पूर्वभाद्रपदा मानुषः। ष स ह उत्तरभाद्रपदा मानुषः। अं अः ल क्ष रेवती देवः। बृहच्छ्रीक्रमे—

उत्तराद्दक्षिणाग्रां तु रेखां कुर्याच्चतुष्टयीम् ॥
दशरेखाः पश्चिमाग्राः कर्त्तव्या वीरवन्दिते।
अश्विन्यादिक्रमेणैव विलिखेत्तारकाः पुनः ॥
अकारादिक्षकारान्तान् द्विचन्द्रवह्निवेदकान्।
भूमीन्दुनेत्रचन्द्राक्षिण अश्लेषान्तं खगौ प्रिये ॥
द्विभूनेत्र नेत्रयुग्मांक्षेन्दुनेत्राग्निचन्द्रकान् ।

मघादिज्येष्ठापर्यन्तं द्वितीयं नवतारकम् ॥
वह्निभूमीन्दुचन्द्रांश्च युग्मेन्दुनेत्रवह्निकान् ।
वेदेन भेदितान् वर्णान् रेवत्यंशगतान् क्रमात् ॥

तथा च निबन्धे

पूर्वोत्तरत्रयञ्चैव भरण्यार्द्राथ रोहिणी ।
इमानि मानुषान्याहुर्नक्षत्राणि मनीषिणः ॥
ज्येष्ठा-शतभिषा-मूला-धनिष्ठाश्लेषकृत्तिकाः ।
चित्रा-मघा-विशाखाः स्युस्तारा राक्षसदेवताः ॥
अश्विनी रेवती पुष्या स्वाती हस्ता पुनर्वसुः ।
अनुराधा मृगशिरा श्रवणा देवतारकाः ॥

तथा

स्वजातौ परमा प्रीतिर्मध्यमा भिन्नजातिषु ।
रक्षोमानुषयोर्नाशो वैरं दानवदेवयोः ॥
जन्म-सम्पद्विपत्क्षेम-प्रत्यरिः साधको वधः ।
मित्रं परममित्रञ्च जन्मादीनि पुनः पुनः ॥

जन्मतृतीयपञ्चमसप्तमानि नक्षत्राणि वर्जनीयानि।

तथा च राघवभट्टः—

रसाष्टनवभद्राणि युगयुग्ममतानि च ।
इतराणि न भद्राणि तत्त्याज्यानि मनीषिणा ॥

इत्यादि। तत्र स्वनक्षत्रादेव नक्षत्रं गणनीयम्। स्वनक्षत्राज्ञाने स्वनामाद्यक्षर-सम्बन्धिनक्षत्रादेव नक्षत्रं गणनीयम्। पिङ्गलातन्त्रे—

प्रकटं यस्य जन्मर्क्षं तस्य जन्मर्क्षतो भवेत् ।
प्रनष्टं जन्मभं यस्य तस्य नामर्क्षतो भवेत् ॥

इति वचनात्। तथा च—

प्रादक्षिण्येन गणयेत् साधकाद्यक्षरात् सुधीः ।

इति वचनात्। प्रकारान्तरं निबन्धे—

प्रापालाभात् पटुप्राह्यं रुद्रस्याद्रिरुरुः करम् ।
लोकलोपपटुप्रायः खलो घो भेषु भेदिताः ॥
पक्षैकत्र्यब्धिरूपावनिभुजशशियुग्मेन्दुपक्षाः ।
युग्मैकद्वियुग्मनेत्रेन्दुपक्षाग्निचन्द्रकान् ॥

त्र्यशशिभूरेकपक्षेन्दुनेत्राग्निवेदाः ।
वर्णाः क्रमात् स्वराश्यन्त्यौ रेवत्यंशगतावुभौ ॥
जप्तुर्नक्षत्रादथ परिगणयेत् जन्म-सम्पत्क्रमेण सुधीः। इति वचनात्।

नक्षत्रचक्र—नक्षत्रचक्र से विचार करते समय मन्त्र लेने वाले का जन्मनक्षत्र और मन्त्र का पहला अक्षर जिस कोष्ठ मे हो, उसमे स्थित नक्षत्र को लेकर गणना करे। यदि जन्मनक्षत्र ज्ञात न हो तो नाम के पहले अक्षर से अपना नक्षत्र निश्चित कर ले तब गणना करे। बृहच्छ्रीक्रम एव निबन्ध-वचन के अनुसार नक्षत्र चक्र निम्न प्रकार का होता है—

नक्षत्रचक्र

अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा
अ आ	ई	ई उ ऊ	ऋ ॠ ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ औ	क	ख ग
देव	नर	राक्षस	नर	देव	नर	देव	देव	राक्षस
मघा	पूर्वा फा	उ फा.	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
घ ङ	च	छ ज	झ ञ	ट ठ	ड	ढ ण	त थ द	ध
राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	देव	राक्षस	देव	राक्षस
मूल	पूर्वाषा	उत्तराषा.	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपद	उत्तराभाद्र	रेवती
न प फ	ब	भ	म	य र	ल	व श	ष स ह	ळ क्ष अः अं
राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	राक्षस	नर	नर	देव

अपनी जाति से परम प्रीति होती है मित्र जाति मे प्रीति मध्यम होती है। राक्षस और मनुष्य से विनाश होता है। राक्षस और देवगण से शत्रुता होती है। अतः मनुष्यगण के लिये मनुष्यगण का मन्त्र श्रेष्ठ होता है। देवगण का मन्त्र भी उत्तम होता है, किन्तु राक्षसगण का मन्त्र घातक होता है। देवगण के लिये मनुष्यगण का मन्त्र मध्यम होता है। राक्षसगण का मन्त्र शत्रु होता है। राक्षसगण के लिये केवल राक्षसगण का मन्त्र ही ठीक होता है। इस प्रकार विचार कर अपने नक्षत्र से मन्त्र के नक्षत्र तक गिने। गणना का फल निम्न प्रकार का होता है—

१, १०, १९ हो तो जन्म।
२, ११, २० हो तो सम्पत्।
३, १२, २१ हो तो विपत्।
४, १३, २२ हो तो क्षेम।
५, १४, २३ हो तो प्रत्यरि।
६, १५, २४ हो तो साधक।
७, १६, २५ हो तो वध।
८, १७, २६ हो तो मित्र।
९, १८, २७ हो तो परममित्र।

अकथहचक्रम्

चतुरस्रे लिखेद्वर्णान् चतुःकोष्ठसमन्विते ।

चतुःकोष्ठे चतुश्चतुकोष्ठे षोडश कोष्ठ इति यावत् । विश्वसारे—

चतुरस्रं लिखेत् कोष्ठं चतुःकोष्ठसमन्वितम् ।
पुनश्चतुष्क तत्रापि लिखेद्धीमान् क्रमेण तु ।

ततः षोडशकोष्ठेषु अकारादिवर्णान् प्रादक्षिण्येन लिखेत्। तत्र क्रमः इन्द्राग्नि-रुद्र-नव-नेत्र-युगार्क-दिक्षु-ऋत्वष्ट-षोडश-चतुर्दशभौतिकेषु । पातालपञ्चदशवह्निहिमांशुकोष्ठे वर्णाल्लिखेल्लिपिभवान् क्रमशस्तु धीमान् ॥

नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् ।
चतुर्भिः कोष्ठैरेकैकमिति कोष्ठचतुष्टयम् ॥
पुनः कोष्ठग-कोष्ठेषु सव्यतो नाम्न आदितः ।
सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिः क्रमाज्ज्ञेया विचक्षणैः ॥

सव्यतो दक्षिणतः ।

कल्पद्रुमे—

पूर्वापरायतं कृत्वा पञ्चसूत्रं प्रकल्पयेत् ।
तथैव दक्षिणोदीच्यक्रमेण पञ्चसूत्रकम् ।
यथा षोडशकोष्ठानि सम्पद्यन्ते तथा लिखेत् ॥

विश्वसारे—

अकारादि-हकारान्तं मूलात्कोष्ठादितः सुधीः ।
दक्षिणावर्त्तयोगेन कोष्ठे वर्णान् लिखेत्सुधीः ।
येनैव लेखनं कुर्यात्तेनैव गणनं स्मृतम् ॥
सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिः क्रमाज्ज्ञेयो विचक्षणैः ।
सिद्धः सिध्यति कालेन साध्यस्तु जपहोमतः ।
सुसिद्धो ग्रहणादेव रिपुर्मूलं निकृन्तति ॥

तन्त्रान्तरे—

सिद्धार्णा बान्धवा प्रोक्ताः साध्यास्तु सेवकाः स्मृताः ।
सुसिद्धाः पोषका ज्ञेयाः शत्रवो घातकाः स्मृताः ॥
जपेन बन्धुः सिद्धः स्यात् सेवकोऽधिकसेवया ।
पुष्णाति पोषकोऽभीष्टं घातको नाशयेद् ध्रुवम् ॥
सिद्धसिद्धो यथोक्तेन द्विगुणात् सिद्धसाध्यकः ।

सिद्धः सुसिद्धोऽर्द्धजपात् सिद्धारिर्हन्ति बान्धवान् ॥
साध्यसिद्धो द्विगुणकः साध्यसाध्यो निरर्थकः ।
तत्सुसिद्धो द्विगुणजपात् साध्यारिर्हन्ति गोत्रजान् ॥
सुसिद्धसिद्धोऽर्द्धजपात्तत्साध्यो द्विगुणाधिकात् ।
तत्सुसिद्धो ग्रहादेव सुसिद्धोऽरिः स्वगोत्रहा ॥
अरिसिद्धः सुतान् हन्यादरिसाध्यस्तु कन्यकाः ।
तत्सुसिद्धस्तु पत्नीघ्नस्तदरिर्हन्ति साधकम् ॥

अकथहचक्र—अकथह चक्र निम्न प्रकार का होता है। यह चक्र अकडम अक्षर से प्रारम्भ होता है; अतः इसका नाम अकडम चक्र है यह चक्र सोलह कोष्ठकों का होता है, जिसमें १, ३, ११, ९, २, ४, १२, १०, ६, ८, १६, १४, ५, ७, १५ एवं १३वें कोष्ठक मे क्रमशः मातृकावर्णों को लिखा जाता है। इस चक्र का स्वरूप नीचे अंकित चित्र में प्रदर्शित है—

अकथह चक्र

१ अ क थ ह	२ उ ङ प	३ आ ख द	४ ऊ च फ
५ ओ ड ब	६ ॡ झ म	७ औ ढ श	८ ऌ ञ य
९ इ घ न	१० ऋ ज भ	११ ई ग ध	१२ ॠ छ व
१३ अः त स	१४ ऐ ड ल	१५ अं ण ष	१६ ए ट र

इस चक्र में नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर तक क्रमशः १ सिद्ध, २ साध्य, ३ सुसिद्ध एवं ४ अरि माना जाता है।

जिन ४ कोष्ठकों में साधक के नाम का प्रथमाक्षर हो, उन्हे सिद्धचतुष्टय कहा जाता है। प्रदक्षिणक्रम से उससे अगले ४ कोष्ठकों को साध्यचतुष्टय कहते हैं। उससे अगले चार कोष्ठकों को सुसिद्धचतुष्टय और अन्तिम चार कोष्ठकों को शत्रुचतुष्टय कहते हैं।

यदि साधक तथा मन्त्र इन दोनों के प्रथमाक्षर एक ही कोष्ठक में हो तो मन्त्र सिद्ध कहलाता है। साधक के नाम के प्रथमाक्षर वाले कोष्ठक से दूसरे में मन्त्र का प्रथमाक्षर हो तो सिद्धसाध्य कहा जाता है। उससे तीसरे में हो तो सिद्धसुसिद्ध और उससे चौथे कोष्ठक में मन्त्राक्षर हो तो मन्त्र को सिद्धारि कहते है।

नाम के प्रथमाक्षर वाले चार कोष्ठकों से अग्रिम कोष्ठकों मे मन्त्र का प्रथमाक्षर हो तो जिस कोष्ठक मे नामाक्षर हो, उसकी पंक्ति वाले कोष्ठक से प्रारम्भ करके पूर्ववत् गिनती करनी चाहिये। यहाँ प्रथम कोष्ठक मे मन्त्राक्षर हो तो साध्यसिद्ध, द्वितीय कोष्ठक मे हो तो साध्यसाध्य, तृतीय मे हो तो साध्यसुसिद्ध एवं चतुर्थ कोष्ठक मे हो तो मन्त्र को साध्यशत्रु समझा जाता है।

इसी भाँति यदि तीसरे तथा चौथे ४ ४ कोष्ठको में मन्त्र का प्रथमाक्षर हो तो पूर्वोक्त रीति से विचार करना चाहिये। तीसरे ४ कोष्ठकों के पहले, दूसरे, तीसरे एवं चौथे कोष्ठक मे मन्त्राक्षर होने से क्रमश सुसिद्धसिद्ध, सुसिद्धसाध्य, सुसिद्धसुसिद्ध तथा सुसिद्धशत्रु कहा जाता है। चौथे चारो कोष्ठको के पहले, दूसरे, तीसरे तथा चौथे कोष्ठक मे मन्त्राक्षर होने पर मन्त्र क्रमश अरिसिद्ध, अरिसाध्य, अरिसुसिद्ध एव अरिअरि कहा जाता है। इसके उपरान्त मन्त्र का विचार निम्न प्रकार से करना चाहिये

सिद्ध अरि का प्रभाव—

१ सिद्धसिद्ध मन्त्र यथोक्त समय मे अर्थात् निर्धारित संख्या में जप करने से सिद्ध होता है। सिद्धसाध्य उससे दूने समय मं अर्थात् दूनी सख्या मे जप से सिद्ध होते हैं। सिद्धसुसिद्ध मन्त्र निर्धारित संख्या से आधा जप करने में सिद्ध होता है, परन्तु सिद्धारि मन्त्र बान्धवों का नाशक होता है; अत. त्याज्य है।

२ साध्यसिद्ध दूनी संख्या मे जप करने से सिद्ध होता है। साध्यसाध्य मन्त्र निरर्थक होता है। इससे कोई फल प्राप्त नही होता है साध्यसुसिद्ध मन्त्र भी दूनी संख्या में जप करने से सिद्ध होता है परन्तु साध्यारि मन्त्र अपने गोत्र के लोगों का नाशक होता है, अत: त्याज्य है।

३ सुसिद्धसिद्ध मन्त्र आधी संख्या मे जप करने से, सुसिद्धसाध्य दूनी सख्या में जप करने से तथा सुसिद्धसुसिद्ध मन्त्र दीक्षामात्र से सिद्ध हो जाता है, परन्तु सुसिद्धारि मन्त्र कुटुम्बियों को नष्ट करता है, अत त्याज्य है।

४. अरिसिद्ध मन्त्र पुत्र की, अरिसाध्य कन्या की, अरिसुसिद्ध पत्नी की तथा अरि-अरि मन्त्र स्वयं साधक की मृत्यु का कारण बनता है। अत ऐसे मन्त्र सर्वथा त्याज्य है। उदाहरणस्वरूप देवदत्त कोई ऐसा मन्त्र ग्रहण करता है, जिसका प्रथमाक्षर 'ऐ' है।

उक्त चक्र में देवदत्त के नाम का प्रथमाक्षर 'द' दूसरे कोष्ठक में पड़ता है तथा मन्त्र का प्रथमाक्षर ऐ चौदहवे कोष्ठ में पड़ता है। इस प्रकार देवदत्त के नामाक्षर से मन्त्र प्रथमाक्षर सुसिद्धचतुष्टय के चतुर्थ कोष्ठक में पड़ेगी। अत: सुसिद्धारि होने से यह मन्त्र देवदत्त के लिये त्याज्य है।

तन्त्रान्तर के अनुसार सिद्धमन्त्र बान्धव कहलाता है। साध्यमन्त्र को सेवक माना जाता है। सुसिद्ध को पोषक माना जाता है। अरिमन्त्र घातक होता है।

जप से बन्धु सिद्ध होता है। अधिक सेवा से सेवक सिद्ध होता है। पोषक मन्त्र पुष्टि प्रदान करता है। घातक मन्त्र निश्चित रूप से विनाश करता है

अथ वैरिमन्त्रपरित्यागप्रमाणमाह तन्त्रे—

गवां क्षीरे द्रोणमिते जपेन्मन्त्रशताष्टकम्।
पीत्वा क्षीरं जले तद्वत् समुच्चार्य त्यजेत्तथा।
अनेनैव विधानेन वैरिमन्त्राद् विमुच्यते॥
अरिमन्त्रं विदित्वा तु न पुनः प्रजपेच्च तत्।
सन्त्यज्य तद् देवतायास्तस्या अन्यं भजेन्मनुम्॥

द्रोणपरिमाणं यथा तन्त्रान्तरे—

पलद्वयन्तु प्रसृतिः कुडवं तच्चतुष्टयम्।
चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकम्।
चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कथितो मानवेदिभिः॥

प्रकारान्तरमाह रुद्रयामले—

वटपत्रे लिखित्वारिमन्त्रं स्रोतसि निक्षिपेत्।
एवं मन्त्रविमुक्तिः स्यादित्याह भगवान् शिवः॥

वैरिमन्त्र का त्याग—एक द्रोण गाय के दूध को १०८ मन्त्रजप से मन्त्रित करे थोड़ा दूध पीकर शेष दूध को जल में छोड़ दे। इस विधान से वैरिमन्त्र का त्याग होता है। यह ज्ञात होने पर कि मन्त्र शत्रु है, उसका जप न करे। उसके देवता के अन्य मन्त्र का जप करे।

वैदिक तौल द्रोण का परिमाण इस प्रकार का है—२ पल = १ प्रसृति, चार प्रसृति = १ कुडव, ४ कुड़व = १ प्रस्थ, ४ प्रस्थ = १ आढक, ४ आढक = १ द्रोण = लगभग १० किलो। रुद्रयामल के अनुसार वटपत्र पर अरिमन्त्र लिखकर उसे जलधारा में प्रवाहित कर दे. इससे वैरिमन्त्र का परित्याग हो जाता है।

अकडमचक्रम्

रेखाद्वयं पूर्वपरेण कुर्यात्तन्मध्यतो याम्यकुबेरभेदात्।
महेशरक्षोऽधिपतिक्रमेण तिर्यक्तथा वायुहुताशनेन॥
अकारादिक्षकारान्तान् क्लीबहीनान् लिखेत्ततः।
ऋ ॠ वर्णद्वयं ऌ ॡ तद्धि क्लीबं प्रचक्षते॥
एकैकक्रमतो लेख्यान् मेषादिषु वृषान्तकान्।
गणयेत् क्रमशो भद्रे! नामादिवर्णपूर्वकान्।
मेषादितोऽपि मीनान्तं गणयेत् क्रमशः सुधीः॥
जप्तुः स्वनामतो मन्त्री यावन्मन्त्रादिमाक्षरम्।

रत्नावल्याम्—

द्वादशाख्ये राशिचक्रे कूटषण्डविवर्जितान् ।
आदिहन्ताद् लिखेद्वर्णान् पुरतोयावदीश्वरम् ॥
सिद्धसाध्यसुसिद्धारीन् पुनः सिद्धादयः पुनः ।
नवैकपञ्चमे सिद्धः साध्यः षड्दशयुग्मके ॥
सुसिद्धस्त्रिसप्तके रुद्रे वेदाष्टद्वादशे रिपुः ।
एतत्ते कथितं देवि अकडमादिकमुत्तमम् ॥

इदं तु गोपालविषयकमेव, 'गोपालेऽकडमः स्मृत' इति वचनात्। शिवविषयेऽपि—

वैष्णवं राशिसंशुद्धं शैवञ्चाकडमं स्मृतम् ।

इति यामलीयात्। तथा च वाराहीतन्त्रे—

ताराशुद्धिर्वैष्णवानां कोष्ठशुद्धिः शिवस्य च ।
राशिशुद्धिस्त्रैपुरे च गोपालेऽकडमः स्मृतः ॥

अकडम चक्र—अकडम चक्र निम्न प्रकार का होता है—

अकडम चक्र

अः ठ भ मीन / कुम्भ अं ट ब	अ क ड म मेष	आ ख ढ य वृष / मिथुन इ ग ण र
औ ञ फ क्ष कर्क		ई घ त ल मकर
धनु ओ झ प ह / वृश्चिक ऐ ज न स	ए छ ध ष तुला	उ ङ थ व सिंह / कन्या ऊ च द श

द्वादश दल के चक्र में नपुंसक वर्णों ऋ ॠ ऌ ॡ को छोड़कर 'अ' से 'ह' तक के सभी वर्णों को प्रदक्षिणक्रम से लिखे। इस चक्र में साधक के नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र के प्रथमाक्षर तक गिने। इस गणना से पता चलता है कि मन्त्र सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध या अरि है।

साधक के नाम के प्रथमाक्षर वाले कोष्ठक से १, ५ तथा नवें कोष्ठक में पड़ने वाला मन्त्र सिद्ध; २, ६, १०वें कोष्ठक में पड़ने वाला मन्त्र साध्य, ३, ७, ११वें कोष्ठक

में पड़ने वाला मन्त्र सुसिद्ध और ४, ८, १२वें कोष्ठक में पड़ने वाला मन्त्र अरि होता है।

रत्नावली के अनुसार यह गोपालमन्त्रों के लिये होता है।

वाराहीतन्त्र के अनुसार वैष्णवों के लिये नागशुद्धि, शैवों के लिये कोष्ठशुद्धि [illegible] के लिये राशिशुद्धि और गोपालमन्त्रों के लिये अकडमशुद्धि विचारणीय है।

ऋणि धनिचक्रम्

तद्यथा –

कोष्ठान्येकादशान्येव वेदेन पूरितानि च।
अकारादिहकारान्तान् लिखेत्कोष्ठेषु तत्त्ववित्॥
प्रथमं पञ्चकोष्ठेषु ह्रस्वदीर्घक्रमेण तु।
द्वयं द्वयं लिखेत्तत्र विचारे खलु साधकः।
शेषेष्वेकैकशो वर्णान् क्रमशस्तु लिखेत् सुधीः॥

तथा—

द्वौ द्वौ स्वरौ पञ्चसु कोष्ठकेषु शेषान् स्वरान् षट्सु षडेकमेकम्।
कादीन हशेषान् विलिखेत्ततोऽर्णान् एकैकमेकादशकोष्ठकेषु।
षट्काल - काल - वियदग्नि - समुद्र - वेद-
खाकाश - शून्य - दहना खलु साध्यवर्णाः।
युग्म - द्वि - पञ्च - वियदम्बर - युक् - शशाङ्क-
व्योमाब्धि वेदशशिनः खलु साधकानाः।
नामाङ्कजालादकठघाद् गजभुक्तशेषं
ज्ञात्वोभयोरधिकशेषमृणं धन स्यात्॥

अस्यार्थः—साध्यवर्णान् स्वरव्यञ्जनभेदेन पृथक्कृतानि षट्कालाद्यङ्कैर्गुणितानि कृत्वा तथा साधकनामाक्षराणि स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक् कृतान् युग्माद्यैरङ्कैर्गुणितान् कृत्वा अष्टसंख्याभिर्हत्वा उभयोः साध्यसाधकयोर्यदधिकं तदृणं यन्न्यूनं तद्धनम्।

एवं ज्ञात्वा मन्त्रं दद्यात्। मन्त्रश्चेदृणी भवति तदा मन्त्रः शुभदो भवति धनी चेन्न। तथा च तन्त्रान्तरे—

मन्त्रो यद्यधिकाङ्कः स्यात्तदा मन्त्रं जपेत् सुधीः।
समेऽपि च जपेन्मन्त्रं न जपेत्तु ऋणाधिके।
शून्ये मृत्युं विजानीयात्तस्माच्छून्यं परित्यजेत्॥

ऋणाधिके धने।

तथा—

इन्द्रक्षनेत्ररविपञ्चदशर्तुवेदवह्न्यायुधाष्टनवभिर्गुणितांश्च साध्यान् ।
दिग्भूगिरिश्रुतिगजाग्निमुनीषुवेदषड्वह्निभिस्तु गुणितानथ, साधकार्णान् ।

षट्कालेत्यादिकन्तु विष्णुविषयं रामार्च्चनचन्द्रिकाधृतत्वादिति केचित्। वस्तुतस्तु पूर्वस्यैव विवरणमिदम्। तथा च इन्द्रक्षनेत्र इत्याद्यभिधाय—

नामार्णकोष्ठांकमथाभिहन्यादेकादिरुद्राङ्कगतं क्रमेण। इति।

व्यक्तं हि रुद्रयामले—

साध्याङ्कान् साधकाङ्कांश्च पूरयेद्ग्रहसंख्यया।
गुणिते हतेऽष्टाभिर्यच्छेषं जायते स्फुटम्।
तदङ्कं कथयाम्यत्र एकादशगृहं स्थितम्॥

इत्युक्त्वा षट्काल-काल इत्युक्तम्। तन्त्रार्णवे

मन्त्रस्त्वृणी शुभफलोऽप्यशुभो धनी च तुल्यं यदा समफलः कथितो मुनीन्द्रैः।

अन्यत्र—

शून्ये मृत्युमवाप्नोति धने च विफलं भवेत्।
ऋणे तु प्राप्तिमात्रेण सर्वसिद्धिस्तु जायते॥

प्रकारान्तरम्—

नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम्।
त्रिधा कृत्वा स्वरैर्भिन्नं तदन्यद्विपरीतकम्।

अस्यार्थः—साधकनामाद्यक्षरतो गणनया यावन्मन्त्राद्यक्षर तत्संख्यं त्रिधा कृत्वा सप्तभिर्हृत्वा अधिकं ऋणं शेषं धनं स्यात्। अन्यदिति मन्त्राद्यक्षरमारभ्य यावत् साधकनामाद्यक्षरं भवेत् तावत्संख्यां सप्तगुणं कृत्वा त्रिभिर्हरेत्। अन्यच्च पिङ्गलामते—

साध्यनामद्विगुणितं साधकेन समन्वितम्।
अष्टाभिश्च हरेच्छेषं तदन्यद्विपरीतकम्॥

अस्यार्थः—साध्यनाम स्वरव्यञ्जनभेदेन द्विगुणीकृत्य साधकनामाक्षरेण स्वर-व्यञ्जनभेदेन संयोज्य अष्टाभिर्हृत्वा ऋणं धनं ज्ञेयम्। अन्यदिति साधकनामाक्षरं स्वरव्यञ्जनभेदेन द्विगुणीकृत्य साध्याक्षरेण स्वरव्यञ्जनभेदेन संयोज्य अष्टाभि-र्हृत्वा अधिकं ऋणं शेषं धनं ज्ञेयम्।

ऋणी-धनीचक्र ऋणी-धनीचक्र निम्न प्रकार का होता है—

६	६	६	०	३	४	४	०	०	०	३
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अ:
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
२	२	५	०	०	२	१	०	४	४	१

इस चक्र के उपरि भाग में ६ ६ ६ ० ३ ४ ४ ० ० ० ३ साध्यांक हैं। निम्न भाग में २ २ ५ ० ० २ १ ० ४ ४ १ साधकांक हैं। इस चक्र से विचार करने के लिये मन्त्र के स्वर और व्यञ्जन वर्णों को अलग-अलग करके उनमे से प्रत्येक के अंक चक्र से ज्ञात करके जोड़ ले।

इसी प्रकार मन्त्र लेने वाले साधक के नामाक्षरों के स्वर और व्यजनो से अंक जानकर जोड़ ले। अब दोनों योगफलों में अलग-अलग ८ से भाग दें। यदि मन्त्र का शेष अधिक हो तो वह ऋणी माना जाता है और यदि कम हो तो धनी माना जाता है। ऋणी मन्त्र से अतिशीघ्र सिद्धि मिलती है। दोनों का शेष बराबर हो तो भी मन्त्र उत्तम माना जाता है। धनी मन्त्र से सिद्धि देर से मिलती है। यदि शेष में शून्य रहे तो उस मन्त्र को मृत्युदायी सम-त्ना चाहिये। उदाहरणस्वरूप देवदत्त 'ऐं नमः भगवति वद वद वाग्देवी स्वाहा' मन्त्र को ग्रहण करना चाहता है तो ऋणी-धनी विचार निम्न प्रकार से होगा—देवदत्त के नामाक्षर के अंक—द् = १, ए = २, व् = १, अ = २, द् = १, अ = २, त् = ०, त् = ०, अ = २—कुल योग = ११।

मन्त्राक्षर के अंक— ऐ = ६, अँ = ०, न् = ०, अ = ६, म् = ६, अ = ३, स् = १, अ = ६, द् = ४, अ = ६, प् = ४, अ = ६, द् = ४, अ = ६, व = ४, आ = ६, ग् = ६, द् = ४ , ए = ६, म = ४, र = ६ स = ०, व् = ४, आ = ६, ह = ३, आ = ६—कुल योग = १११।

मन्त्र के स्वर-व्यंजनों का योग १११ हुआ। इसमें ८ का भाग देने से शेष ३ बचा। देवदत्त के नाम के स्वर-व्यंजनों का योग ११ है। ठसमें ८ का भाग देने से भी शेष ३ बचा। मन्त्र उत्तम है; क्योंकि दोनों के शेष बराबर हैं। मन्त्र ग्रहण के योग्य है।

रुद्रयामल से भी इस विधि की पुष्टि होती है।

तन्त्रार्णव के अनुसार ऋणी मन्त्र शुभ फलप्रद होता है। धनी मन्त्र अशुभ होता है। शेष बराबर होने पर सममन्त्र होता है। वह उत्तम होता है। देर से फल मिलता है। अन्यत्र कहा गया है कि शेष शून्य होने से मृत्यु होती है धनी होने पर विफल होता है। ऋणी मन्त्र प्राप्त होते ही सिद्धिप्रद होता है।

ऋणी-धनी ज्ञात करने का अन्य प्रकार यह है कि नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र के प्रथमाक्षर तक वर्णमालाक्रम से गणना करके ३ से गुणा करे। ७ से भाग दे। जो शेष बचे, उसे नामराशि समझना चाहिये।

इसी प्रकार मन्त्र के प्रथमाक्षर से नाम के प्रथमाक्षर तक गणना करके उसे गुणा करके ७ का भाग देने पर जो शेष बचे, उसे मन्त्रराशि कहते हैं।

पूर्वोक्त नियमानुसार अधिक राशि ऋणी तथा कम राशि धनी होता है, अतः ऋणी राशि के मन्त्र को ग्रहण करना उचित है। धनी राशि का मन्त्र त्याज्य है।

पिंगला के मत से स्वर तथा व्यंजन के रूप में मन्त्र के अक्षरों को अलग-अलग करके कुल संख्या को दुगुना कर दे। उसमें साधक के नामाक्षरों की संख्या जोड़ दे। दोनों के योगफल मे ८ का भाग देने से जो शेष बचे, उसे मन्त्रराशि कहते हैं।

इसी प्रकार साधक के नाम के स्वर-व्यंजनों के योग को दुगुना करके उसमें मन्त्र के अक्षरो को जोड़ कर ८ का भाग देने से जो शेष बचे, उसे नामराशि समझे। यहाँ ऋणी तथा धनी का विचार पूर्वोक्त नियमानुसार करना चाहिये।

उदाहरण—देवदत्त नाम के स्वर-व्यंजनो का योग ९ है तथा ऐं नमः भगवति मन्त्र के स्वर-व्यंजनों का योग २६ है। मन्त्र के स्वर-व्यंजनो के योग को दुगुना कर देने पर ५२ हुआ। इसमें नामाक्षरो के योग को जोड़ने से ६१ हुआ। इसमें ८ का भाग देने पर ५ शेष रहा। यह मन्त्रराशि हुई।

इसी प्रकार नाम के स्वर-व्यंजनों के योग को दुगुना करने पर १८ हुआ। इसमें मन्त्राक्षर २६ जोड़ने से कुलयोग ४४ हुआ। इसमें ८ का भाग देने से शेष ४ बचा। अतः नामराशि ४ हुई।

यहाँ नामराशि से मन्त्रराशि की संख्या अधिक होने के कारण मन्त्र ऋणी है। अतः यह मन्त्र देवदत्त के लिये ग्राह्य है।

जो मन्त्र पूर्वजन्म में उपासना के समय होने वाले पाप के कारण साधक को अपना फल नहीं दे पाया हो तथा अपने द्वारा पापक्षय होने के समय साधक की आयु समाप्त हो गयी हो तो अन्य जन्म में वह मन्त्र साधक का ऋणी होता है। ऐसा मन्त्र साधक को अभीष्ट फल शीघ्र देता है।

यदि नामराशि तथा मन्त्रराशि के अंक समान हों तो उपासना करने से साधक को यथासमय फल मिलता है, परन्तु यदि मन्त्र धनी राशि का है तो वह या तो साधना करने पर ही फल देता है; अन्यथा निष्फल होता है।

नामग्रहणप्रकारमाह सनत्कुमारीये—

पितृमातृकृतं नाम त्यक्त्वा शर्मादिवेदकान् ।
श्रीवर्णञ्च ततो हित्वा चक्रेषु योजयेत् क्रमात् ॥

नामग्रहणप्रकारमाह पिङ्गलायाम्—

प्रसिद्धः यद्भवेन्नाम कं वास्य जन्मनाम च ।
यतीनां पुष्पपातेन गुरुणा यत् कृतं भवेत् ॥

तन्त्रान्तरे—

लोकप्रसिद्धमथवा मात्रा पित्रा तथा कृतम् ॥

रुद्रयामले —

सुप्तो जागर्त्ति येनासौ दूरस्थः प्रतिभाषते ।
यदत्यन्यमनस्कोऽपि तन्नाम ग्राह्यमेव च ॥

देवताभेदेन चक्रविचारस्यावश्यकता वाराहीतन्त्रे यामलादौ च—

ताराशुद्धिर्वैष्णवानां कोष्ठशुद्धिः शिवस्य च ।
राशिशुद्धिस्त्रैपुरे च गोपालेऽकडमः स्मृतः ॥
अकडमो रामचन्द्रे गणेशे हरचक्रकम् ।
कोष्ठचक्रं वराहस्य महालक्ष्म्याः कुलाकुलम् ॥
नामादिचक्रं सर्वेषां भूतचक्रं तथैव च ।
त्रैपुरं तारके चक्रे शुद्धं मन्त्रं जपेद्बुधः ॥

तथा—

वैष्णवं राशिसंशुद्धं शैवञ्चाकडमं स्मृतम् ।
कालिकायाश्च तारायास्ताराचक्रं शुभावहम् ॥
चण्डिकायास्तारकोष्ठे गोपालेऽकडमं स्मृतम् ।
हरचक्रे सर्वमन्त्रं धनाधिक्ये न चाश्रयेत् ॥
ऋणाधिक्ये शुभं विद्याद्धनाधिक्ये च नो विधिः ।
दोषान् संशोध्य गृह्णीयान्मध्यदेशोद्भवस्य च ॥
ऋणी मन्त्रः शुभफलो धनी मन्त्रोऽशुभप्रदः ।
तुल्यं यदा शुभफलं कथितो मुनिसत्तमैः ॥

अन्यत्रापि—

शून्ये मृत्युमवाप्नोति धने च विफलं भवेत् ।
ऋणे च प्राप्तिमात्रेण सर्वसिद्धिस्तु जायते ॥

नामग्रहण-प्रकार—पिंगला के अनुसार साधक के उसी नाम से विचार करना चाहिये जिस नाम से वह प्रसिद्ध होता है अथवा जन्मराशि के नाम से ऋणी-धनी विचार करना चाहिये। यतियों का नाम गुरुप्रदत्त ही ग्राह्य है।

तन्त्रान्तर के अनुसार साधक का जो लोकप्रसिद्ध नाम है, वही ग्राह्य है अथवा माता-पिता के द्वारा दिया गया नाम ही ग्राह्य है।

रुद्रयामल के अनुसार सोया हुआ व्यक्ति जिस नाम से पुकारने पर जाग जाय, उसका वही नाम ग्राह्य है।

वाराहीतन्त्र के अनुसार देवता के अनुसार चक्र का विचार करना चाहिये। वैष्णवों का ताराशुद्धि एवं शैवों के लिये कोष्ठशुद्धि का विचार करना चाहिये। शाक्तों के लिये राशिशुद्धि विचारणीय है। गोपालमन्त्र के साधकों के लिये अकडम चक्र से विचार करना चाहिये। रामचन्द्र के मन्त्र के लिये अकडम चक्र से विचार करे। गणेशमन्त्र के लिये हरचक्र से विचार करना चाहिये। वराहमन्त्र के लिये कोष्ठचक्र से विचार करना चाहिये। महालक्ष्मी के मन्त्र के लिये कुलाकुलचक्र से विचार करना चाहिये। नामादि चक्र और भूतचक्र से सबों के लिये विचार करना चाहिये। त्रिपुरा के मन्त्र के लिये तारा-चक्र से विचार करना चाहिये। विद्वान् को चक्रशुद्ध मन्त्र ही अपना चाहिये। इसके अतिरिक्त वैष्णवों के लिये राशिशुद्धि एवं शैवों के लिये अकडम चक्र से विचार आवश्यक है। काली और तारामन्त्रों के लिये ताराचक्र से विचार करना चाहिये। चण्डिकामन्त्र के लिये ताराचक्र से, गोपालमन्त्र के लिये अकडम चक्र से एवं सभी मन्त्रों का विचार हर चक्र से करना चाहिये। धनी मन्त्र का आश्रय नहीं लिया जाय तो अच्छा है। ऋणी मन्त्र शुभ होता है, धनी विद्या ग्राह्य नहीं है। दोषों को संशोधित करके मध्य देश उद्भूत मन्त्र को ग्रहण करना चाहिये। ऋणी मन्त्र शुभ फलप्रद और धनी मन्त्र अशुभ-प्रदायक होता है। शेष तुल्य बराबर होने पर भी मन्त्र शुभ फलप्रद होता है —यह मुनिसत्तमों का वचन है। अन्यत्र भी कहा गया है कि शेष शून्य होने पर मृत्यु होती है। धनी मन्त्र-साधना विफल होती है। ऋणी मन्त्र प्राप्त होते ही सभी सिद्धियों का दाता होता है।

दीक्षाप्रकरणम्

गुरुर्दीक्षापूर्वदिने स्वशिष्यमभिमन्त्रयेत्।
दर्भशय्यां परिष्कृत्य शिष्यं तत्र निवेशयेत्॥
स्वापमन्त्रेण मन्त्रज्ञः शिशोः शिखां प्रबन्धयेत्।
तन्मन्त्रं स्वापसमये पठेद्वारत्रयं शिशुः॥
श्रीगुरोः पादुकां ध्यात्वा उपवासी जितेन्द्रियः।
तारो हिलिद्वयं शूलपाणये द्विठ ईरितम्॥

वारत्रयं पठित्वा तु उपवासी जितेन्द्रियः ।
श्रीगुरोः पादुकां ध्यात्वा शयीत कुशशायने ॥

मन्त्रान्तरम्

वपमानस्य मन्त्रोऽयं शम्भुना परिकीर्त्तितः ।
नमो जय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ।
रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः ।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥
इति मन्त्रेण सच्छिष्यो देवं प्रार्थ्य स्वपेच्च वा ।
स्वप्ने शुभाशुभं दृष्टं पृच्छेत्प्रातः शिशुं गुरुः ॥
कन्यां छत्रं रथं दीपं प्रासादं कमलं नदीम् ।
कुञ्जरं वृषभं माल्यं समुद्रं फणिनं द्रुमम् ॥
पर्वतं तुरगं मेध्यमाममांसं सुरासवम् ।
एवमादीनि सर्वाणि दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥

इति मन्त्रसिद्धिज्ञापनार्थं शिष्याभिमन्त्रणम् ।

दीक्षा-प्रकरण—दीक्षा से पूर्व जिस दिन दीक्षा होने वाली हो उसके पहले दिन गुरु शिष्य को बुलावे और पवित्र कुशासन पर उसे बिठाकर 'ॐ हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा' निद्रामन्त्र से शिखाबन्धन करे।

शिष्य सोते समय इस मन्त्र का उच्चारण तीन बार करके उपवासी और जितेन्द्रिय रहकर श्रीगुरुपादुका का ध्यान करते हुए कुश की शय्या पर शयन करे। इसके लिये अन्य मन्त्र भी हैं सोते समय शिष्य यह प्रार्थना करे—

नमो जय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ।
रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः ।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥

इस मन्त्र से प्रार्थना करके शिष्य शयन करे।

स्वप्न में शुभाशुभ दिखाई पड़ने पर शिष्य प्रातःकाल गुरु से उसके सम्बन्ध में पूछे।

स्वप्न में यदि हाथी, बैल, माला, समुद्र, सूर्य, सर्प, वृक्ष, पर्वत, अश्व, पवित्र द्रव्य, आम, मांस, सुरा, आसव आदि दिखाई पड़े तो सिद्धि मिलती है। मन्त्र-सिद्धिज्ञापन के लिये शिष्य का अभिमन्त्रण इस प्रकार किया जाता है।

गौतमीये —

मन्त्रारम्भस्तु चैत्रे स्यात् समस्तपुरुषार्थदः ।
वैशाखे रत्नलाभः स्याज्ज्येष्ठे तु मरणं भवेत् ॥
आषाढे बन्धुनाशः स्यात् पूर्णायुः श्रावणे भवेत् ।
प्राणनाशो भवेद्भाद्रे आश्विने रत्नसञ्चयः ॥
कार्त्तिके मन्त्रसिद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथा भवेत् ।
पौषे तु शत्रुपीडा स्यान्माघे मेधाविवर्द्धनम् ॥
फाल्गुने सर्वकामाः स्युर्मलमासं विवर्जयेत् ।

चैत्रे तु गोपालविषयं गौतमीये उक्तत्वात् ।

मधुमासे भवेद्दीक्षा दुःखाय मरणाय च ।

इति योगिनीतन्त्रात् नान्यत्र। तथा—

ज्येष्ठे मृत्युप्रदा विद्या आषाढे सुखसम्पदः ।

इति योगिनीहृदयादाषाढे श्रीविद्यायां न दोषः। तत्र मासः सौर एव।

सौरे मासि शुभा दीक्षा न चान्द्रे न च तारके ।

इति गौतमीयात् । वैशम्पायनसंहितायाम्—

मन्त्रस्यारम्भणं मेषे धनधान्यप्रदं भवेत् ।
वृषे मरणमाप्नोति मिथुनेऽपत्यनाशनम् ॥
कर्कटे मन्त्रसिद्धिः स्यात् सिंहे मेधाविनाशनम् ।
कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्यं तुलायां सर्वसिद्धयः ॥
वृश्चिके स्वर्णलाभः स्याद्धनुर्मानविनाशकम् ।
मकरः पुण्यदः प्रोक्तः कुम्भो धनसमृद्धिदः ।
मीनो दुःखप्रदो नित्यमेव मासविधिक्रमः ॥

दीक्षाकाल—गौतमीय तन्त्र में लिखा है कि चैत्र मास में दीक्षा लेने से पुरुषार्थ-लाभ, वैशाख मे रत्नलाभ, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में बन्धुनाश, श्रावण में पूर्णायु की प्राप्ति, भाद्रमास मे प्राणनाश, आश्विन में रत्नसञ्चय, कार्तिक और मार्गशीर्ष में मन्त्रसिद्धि, पौष में शत्रु-पीड़न, माघ मे मेधावृद्धि और फाल्गुन में दीक्षा लेने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। मलमास मे दीक्षा लेना मना है।

योगिनीतन्त्र में लिखा है कि चैत्र मास मे केवल गोपालमन्त्र ग्राह्य है, अन्य मन्त्र ग्रहण करने से दुःख और मृत्युभय होता है। योगिनीहृदय तन्त्र के अनुसार ज्येष्ठ मे विद्याग्रहण मृत्युप्रद और आषाढ़ में सुख सम्पत्प्रद होता है। यहाँ पर सौरमास ग्राह्य है। गौतमीतन्त्र

के अनुसार सौरमास की दीक्षा शुभ होती है। चान्द्र और तारामास की दीक्षा शुभ नहीं होती।

वैशम्पायनसंहिता के अनुसार मेष में दीक्षा लेना धन-धान्यप्रद, वृष में मृत्यु, मिथुन में अपत्यनाश, कर्क में मन्त्रसिद्धि, सिंह में मेधानाश, कन्या में वृद्धिलाभ, तुला में सर्वसिद्धि, वृश्चिक में स्वर्णलाभ, धनु में मानहानि, मकर में पुण्यलाभ, कुम्भ में धन-समृद्धि और मीन में मन्त्रग्रहण करने से दुःख की प्राप्ति होती है। इसके साथ मासक्रम भी विचारणीय है।

दीक्षायां वारनिर्णय

रविवारे भवेद्वित्तं सोमे शान्तिर्भवेत् किल
आयुरङ्गारको हन्ति तत्र दीक्षां विवर्जयेत् ॥
बुधे सौन्दर्यमाप्नोति ज्ञानं स्यात्तु बृहस्पतौ ।
शुक्रे सौभाग्यमाप्नोति यशोहानिः शनैश्चरे ॥

दीक्षा के लिये वारनिर्णय—रविवार में दीक्षा लेने से धनलाभ, सोमवार में शान्ति, मंगल में आयुनाश, बुध में सौन्दर्यलाभ, वृहस्पति में ज्ञानलाभ, शुक्र में सौभाग्यलाभ और शनिवार में दीक्षा लेने से यश की हानि होती है।

दीक्षायां तिथिनिर्णय:

आगमकल्पद्रुमे—

प्रतिपदि कृता दीक्षा ज्ञाननाशकरी मता ।
द्वितीयायां भवेज्ज्ञानं तृतीयायां शुचिर्भवेत् ॥
चतुर्थ्यां वित्तनाशः स्यात् पञ्चम्यां बुद्धिवर्द्धनम् ।
षष्ठ्यां ज्ञानक्षयः सौख्यं लभते सप्तमीदिने ॥
अष्टम्यां बुद्धिनाशः स्यान्नवम्यां वपुषः क्षयः ।
दशम्यां राजसौभाग्यमेकादश्यां शुचिर्भवेत् ।
द्वादश्यां सर्वशुद्धिः स्यात् त्रयोदश्यां दरिद्रता ॥
तिर्यग्योनिश्चतुर्दश्यां हानिर्मासावसानके ।
पक्षान्ते धर्मवृद्धिः स्यादस्वाध्यायं विवर्जयेत् ॥

अस्वाध्यायमाह –

सन्ध्यागर्जितनिर्घोषभूकम्पोल्कानिपातनम् ।
एतानन्यांश्च दिवसान् श्रुत्युक्तान् परिवर्जयेत् ॥
द्वितीया पञ्चमी चैव षष्ठी चैव विशेषतः ।
द्वादश्यामपि कर्त्तव्यं त्रयोदश्यामथापि वा ॥

इति यत् षष्ठीत्रयोदशविधानं तद्विष्णुविषयं रामार्चनचन्द्रिकाधृतत्वात्।

पञ्चमी सप्तमी षष्ठी द्वितीया पूर्णिमा तथा।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा॥

इति सनत्कुमारवचनात् षष्ठीविधानमपि। शिवविषये दशमीसप्तम्योर्निषेधमाह—

शुक्लपक्षस्य दशमी सप्तमी च विशेषतः।
निन्द्या सदैव षष्ठी स्यादिति शैवागमान्तरे॥

दीक्षा की तिथि—आगमकल्पद्रुम के अनुसार प्रतिपदा में दीक्षा लेने से ज्ञान का नाश, द्वितीया मे ज्ञान का लाभ, तृतीया में पवित्रता, चतुर्थी में धन का नाश, पञ्चमी में बुद्धि की वृद्धि, षष्ठी में ज्ञान का क्षय, सप्तमी में सुख, अष्टमी मे बुद्धि का नाश, नवमी मे देह का क्षय, दशमी मे राज्यप्राप्ति का सौभाग्य, एकादशी में पवित्रता का लाभ, द्वादशी मे सर्वशुद्धि, त्रयोदशी मे दरिद्रता, चतुर्दशी मे तिर्यक् योनित्व की प्राप्ति एवं अमावस्या मे दीक्षा लेने से अनिष्ट होता है। पूर्णिमा में धर्मबुद्धि होती है, परन्तु सन्ध्यागर्जन, जलदगर्जन, भूकम्प, उल्कापात जिस दिन हो और जो दिन श्रुति मे निषिद्ध बताये गये हैं, उसमें दीक्षा न ग्रहण करे।

रामार्चनचन्द्रिका के अनुसार पञ्चमी, सप्तमी, षष्ठी, द्वितीया, पूर्णिमा, त्रयोदशी और दशमी— ये सभी तिथियाँ दीक्षा के लिये प्रशस्त और सर्वकामप्रद हैं, इनमे केवल विष्णुमन्त्र ग्रहण करे।

सनत्कुमारतन्त्र के अनुसार षष्ठी में शिवमन्त्र ग्रहण करने मे दोष नही है। शैवागम के वचनानुसार शुक्ल पक्ष को द्वादशी, सप्तमी और षष्ठी निन्दनीय है।

दीक्षायां नक्षत्रनिर्णयः

अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम्।
कृत्तिकायां भवेद्दुःखी रोहिण्यां वाक्पतिर्भवेत्॥
मृगशीर्षे सुखावाप्तिरार्द्रायां बन्धुनाशनम्।
पुनर्वसौ धनाढ्यः स्यात् पुष्ये शत्रुविनाशनम्॥
अश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम्।
सौन्दर्यं पूर्वफल्गुन्यां प्राप्नोति च न संशयः॥
ज्ञानञ्चोत्तरफल्गुन्यां हस्तायाञ्च धनी भवेत्।
चित्रायां ज्ञानसिद्धिः स्यात् स्वात्यां शत्रुविनाशनम्॥
विशाखायां सुखं चानुराधायां बन्धुवर्द्धनम्।
ज्येष्ठायां सुतहानिः स्यान्मूलायां कीर्त्तिवर्द्धनम्॥
पूर्वाषाढोत्तराषाढे भवेतां कीर्त्तिदायिके।
श्रवणायां भवेद्दुःखी धनिष्ठायां दरिद्रता॥

बुद्धिः शतभिषायां स्यात्पूर्वभाद्रे सुखी भवेत् ।
सौख्यञ्चोत्तरभाद्रे च रेवत्यां कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥

आर्द्राकृत्तिकयोर्निषेधस्तु शिववह्नीतरविषये; तथा च —

आर्द्रायां कृत्तिकायाञ्च मन्त्रारम्भः प्रशस्यते ।
यदीशस्य कृशानोर्वा मन्त्रारम्भो यथाक्रमम् ॥

तन्त्रान्तरे—

अश्विनी-भरणी-स्वाती-विशाखाहस्तभेषु च ।
ज्येष्ठोत्तरात्रयेष्वेवं कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम् ॥

इति ज्येष्ठाभरण्योर्यद्विधानं तद्रामविषयमगस्त्यसंहितोक्तत्वात् ।

दीक्षा में नक्षत्रनिर्णय—अश्विनी नक्षत्र मे दीक्षा लेने से सुख, भरणी में मृत्यु, कृत्तिका मे दुःख, रोहिणी मे वाक्पतित्व, मृगशिरा मे सुखप्राप्ति आर्द्रा मे बन्धुनाश, पुनर्वसु मे धन-सम्पत्तिप्राप्ति, पुष्य मे शत्रुनाश आश्लेषा मे मृत्यु, मघा मे दुःखनाश और पूर्वाफाल्गुनी मे सौन्दर्यलाभ होता है।

इसी प्रकार उत्तराफाल्गुनी मे दीक्षा लेने से ज्ञानप्राप्ति, हस्त मे धनप्राप्ति, स्वाती मे शत्रुनाश, विशाखा मे सुखप्राप्ति, अनुराधा मे बन्धुवृद्धि, ज्येष्ठा मे सुतहानि मूल मे कीर्तिवृद्धि, पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ मे कीर्ति-प्राप्ति श्रवण मे दुःख, धनिष्ठा मे दरिद्रता शतभिषा में ज्ञान, पूर्वभाद्र मे सुख और रेवती मे कीर्तिलाभ होता है किन्तु शिव और वह्निमन्त्र लेने मे आर्द्रा और कृत्तिका दोषावह नहीं होते।

आर्द्रा और कृत्तिका मे मन्त्रारम्भ प्रशस्त होता है। यदि इन दोनो नक्षत्रो मे शिव और अग्निमन्त्र को ग्रहण किया जाय तो उसमे कोई दोष नही होता।

तन्त्रान्तर-वचनानुसार अश्विनी, भरणी, स्वाती, विशाखा, हस्त, ज्येष्ठा और तीनो उत्तरा में मन्त्राभिषेक करने मे कोई दोष नहीं है।

अगस्त्यसंहिता के अनुसार ज्येष्ठा और भरणी नक्षत्र मे राममन्त्र ग्रहण करने मे कोई दोष नहीं है। इन नक्षत्रो मे राममन्त्र ग्रहण किये जा सकते है।

योगनिर्णय

विश्वसारे—

शुभः सिद्धस्तथायुष्मान् ध्रुवयोगस्ततः परम् ।
प्रीतिः सौभाग्ययोगश्च बुद्धियोगस्ततः परम् ।
हर्षणश्च तथा योगः सर्वतन्त्रे शुभावहाः ॥

रत्नावल्याम्—

योगाः स्युः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनो धृतिः।
बुद्धिर्ध्रुवः सुकर्मा च साध्यः शुक्रश्च हर्षणः।
वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्म ऐन्द्रश्च षोडश ॥

दीक्षा में योगनिर्णय—विश्वसारतन्त्र के अनुसार दीक्षा के लिये शुभ योग सिद्ध, आयुष्मान, ध्रुव, प्रीति, सौभाग्य बुद्धि और हर्षण है। रत्नावलीतन्त्र के अनुसार १६ योग प्रशस्त हैं उनमें १ प्रीति, २ आयुष्मान, ३ शोभन, ४ धृति ५ वृद्धि ६ ध्रुव, ७ सुकर्मा, ८ साध्य, ९ शुक्र, १० हर्षण, ११ वरीयान, १२ शिव, १३ ब्रह्म, १४ सिद्ध, १५ सौभाग्य, १६ इन्द्र श्रेष्ठ हैं।

करणनिर्णय

बव-बालव-कौलव-तैतिला वणिजस्तदनन्तरम्।
करणानि शुभान्येव सर्वतन्त्रेषु भाषितम् ॥

दीक्षा के लिय करण—दीक्षा के लिये शुभ करण ५ हैं, जो १ बव २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ वणिज हैं।

लग्ननिर्णय

वृषे सिंहे च कन्यायां धनुर्मीनाख्यलग्नके।
चन्द्रतारानुकूले च कुर्याद्दीक्षाप्रवर्त्तनम् ॥

तथा—

स्थिरलग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे चरः शुभम्।
द्विस्वभावस्थितं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते ॥

अगस्त्यसंहितायाम्—

त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः।
दीक्षायास्तु शुभाः सर्वे वक्रस्थाः सर्वनाशकाः ॥

दीक्षा-लग्न वृष, सिंह, कन्या धनु, मीन लग्न मे चन्द्र-तारा के अनुकूल होने पर दीक्षा होनी चाहिये. विष्णुमन्त्र के सम्बन्ध में स्थिर लग्न अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ प्रशस्त है। शिवमन्त्र के लिये चर लग्न, यथा—मेष, कर्क, तुला और मकर श्रेष्ठ हैं। शक्तिमन्त्र के लिये द्व्यात्मक लग्न अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु, मीन शुभ हैं।

अगस्त्यसंहिता के अनुसार लग्न से तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में पापग्रह तथा लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम, नवम और पञ्चम स्थान मे शुभग्रह होने पर मन्त्र लेना चाहिये किन्तु वक्री ग्रह दीक्षा के लिये अनिष्टकारी है।

पक्षनिर्णय

शुक्लपक्षे शुभा दीक्षा कृष्णेऽप्यापञ्चमादिनात् ।

अगस्त्यसंहितायाम्—

शुक्लपक्षे तु कृष्णे वा दीक्षा सर्वत्र शोभना ।

कालोत्तरे तु -भूतिकामैः सिते सदा मुक्तिकामैः कृष्णपक्षे इति शेषः।
निषिद्धमासेषु तत्तद्विशेषो मुनिभिरुदितः। रत्नावल्याम्—

षष्ठी भाद्रपदे मासि दर्शे कृष्णाचतुर्दशी ।
कार्त्तिके नवमी शुक्ला मार्गे शुक्ला तृतीयका ॥
पौषे तु नवमी शुक्ला माघे शुक्ला चतुर्थिका ।
फाल्गुने नवमी शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥

त्रयोदशीति केचित् ।

वैशाखे चाक्षया चैव ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।
आषाढे पञ्चमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥
एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत् ।
अत्र दीक्षा प्रकर्तव्या न मासञ्च परीक्षयेत् ॥
न वारं न च नक्षत्रं न तिथ्यादिकदूषणम् ।
न योगकरणञ्चैव शङ्करेण च भाषितम् ॥

अन्यच्च मतम्—

चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखैकादशी सिता ।
ज्येष्ठे चतुर्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥
श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणीसहिताष्टमी ।
आश्विने च महापुण्या महाष्टम्यप्यभीष्टदा ॥
कार्त्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तथा सिता ।
षष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता ।
फाल्गुने च सिता षष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥

दीक्षापक्ष—शुक्ल पक्ष की दीक्षा शुभ होती है और कृष्ण पक्ष मे पञ्चमी तक दीक्षा ग्राह्य है। अगस्त्यसंहिता के अनुसार शुक्ल या कृष्ण पक्ष दोनो मे दीक्षा शुभ होती है। कालोत्तरतन्त्र के अनुसार सम्पत्ति की कामना से शुक्ल पक्ष की और मुक्ति की कामना से कृष्ण पक्ष की दीक्षा प्रशस्त होती है।

रत्नावलीतन्त्र के मत से भाद्रमास की षष्ठी, आश्विन की कृष्णाचतुर्दशी, कार्तिक की शुक्ला नवमी, मार्गशीर्ष की तृतीया, पौष की शुक्ला नवमी, माघ की शुक्ला चतुर्थी,

फाल्गुन की शुक्ला नवमी, चैत्र की कामचतुर्दशी, वैशाख की अक्षय तृतीया, ज्येष्ठ का दशहरा, आषाढ़ की शुक्ला पञ्चमी और श्रावण की कृष्ण पञ्चमी में मन्त्र लेना तीर्थस्थान की दीक्षा के समान कोटिगुना फलदायी होता है।

इन देवपर्वों में मास, तिथि, वार, योग, करण और नक्षत्रादि का कोई विचार करना अपेक्षित नहीं है।

अन्य मत से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, वैशाख शुक्ला एकादशी, ज्येष्ठ चतुर्दशी कृष्ण, आषाढ़ की नागपञ्चमी, श्रावण की एकादशी, भाद्र की रोहिणीयुक्ता अष्टमी, आश्विन की महापुण्यदा इष्टदा महाष्टमी, कार्तिक शुक्ला नवमी, मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी, पौष की शुक्ला चतुर्दशी माघ शुक्ला एकादशी एवं फाल्गुन शुक्ला षष्ठी में कालगणना आवश्यक नहीं है।

योगिनीतन्त्रे—

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
रविसंक्रान्तिदिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि॥
मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिनेषु च।
चतुर्थी पञ्चमी चैव चतुर्दश्यष्टमी तथा।
तिथयः शुभदाः प्रोक्ता दीक्षाग्रहणकर्मणि॥

इत्यादिवचनाच्चतुर्दश्यष्टमीति शक्तिविषयम्। चतुर्थीति गणेशविषयं तत्तत्कल्पोक्तत्वात्।

निन्दितेष्वपि मासेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे शुभा।
सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्ति भूतले॥
विशेषतो महादेवि दीक्षाग्रहणकर्मणि।
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्॥
रविसंक्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा।
तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कथञ्चन।
रविसंक्रमणे चैव नान्यदन्वेषितं भवेत्।
न वारतिथिमासादिशोधनं सूर्यपर्वणि॥

एवं चन्द्रग्रहणेऽपि। तथा च रुद्रयामले—

न कुर्यात् शाक्तिकीं दीक्षामुपरागे विभावसौ।
न कुर्याद्वैष्णवीं तान्तु यदि चन्द्रमसो ग्रहः॥

एतच्च गोपाल-श्रीविद्येतरविषयम्।

अन्येषु पर्वयोगेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

इति गौतमीयात् ।

प्रशस्ता सकला दीक्षा स्व-स्ववारे तदा भवेत् ।
सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत् ॥

इति योगिनीहृदयाच्च। तारादौ तु विशेषो यथा—

दीक्षाकालं प्रवक्ष्यामि नीलतन्त्रानुसारतः ।
कृष्णपक्षस्य चाष्टम्यां शुभे लग्ने शुभे क्षणे ॥
पूर्वभाद्रपदायुग्मे मित्रतारादिसंयुते ।
अथवाप्यनुराधायां रेवत्यां वा प्रशस्यते ॥
जानीयाच्छोभनं कालं मन्त्रस्य ग्रहणं प्रति ।
ईषे चैव विशेषेण कार्त्तिके च विशेषतः ॥

योगिनीतन्त्र के मत से उत्तरायण और दक्षिणायनादि सक्रांति, चन्द्र-सूर्यग्रहण युगाद्या और मन्वन्तरा तिथि तथा पूजा के दिनों में दीक्षाकार्य प्रशस्त होता है। निन्दित मास में भी सूर्यग्रहण यदि हो तो उस समय दीक्षा लेना श्रेष्ठ होता है। सूर्य और चन्द्रग्रहण के समय दीक्षा लेने में लग्नादि का कोई विचार नहीं करना पड़ता। सूर्यग्रहण काल के समान कोई दूसरा समय भूतल पर नहीं है। यह दीक्षा के लिये सर्वोत्तम है। ग्रहणकाल में जो जपादि होता है, वह फलप्रद होता है। इसी के समान चन्द्रग्रहण के समय भी दीक्षा का फल होता है।

रुद्रयामल के मत से सूर्यग्रहणकाल में शक्तिदीक्षा और चन्द्रग्रहणकाल में विष्णु-दीक्षा निषिद्ध है। यह निषेध श्रीविद्या और गोपाल को छोड़कर अन्य देवताओं के सम्बन्ध में लागू होता है। गौतमीतन्त्र के अनुसार सभी दीक्षा अपने-अपने वारों में प्रशस्त हैं।

तारामन्त्र की दीक्षा में विशेषता है नीलतन्त्र के अनुसार तारामन्त्र की दीक्षा के विषय में कृष्णाष्टमी तिथि, शुभ लग्न, पूर्वभाद्रपद नक्षत्र और मित्र तारा को शुभ माना जाता है। तारामन्त्र के लिये अनुराधा और रेवती नक्षत्र तथा आश्विन और कार्तिक मास विशेष प्रशस्त हैं। मन्त्र-ग्रहण शुभकाल में करना चाहिये।

सूर्यग्रहणे विशेषमाह रत्नावलीधृतयामले—

श्रीपरा-कालिबीजानि लोपादौर्गश्च यो मनुः ।
सूर्यस्य ग्रहणे लब्धो नृणां मुक्तिफलप्रदः ॥
अमावस्या सोमवारे भौमवारे चतुर्दशी ।
सप्तमी रविवारे च सूर्यपर्वशतैः समाः ॥

कुलार्णवे—

सप्तमी रविवारे च सोमे दर्शस्तथैव च।
चतुर्थी कुजवारे च अष्टमी च वृहस्पतौ।
देवपर्वसमा ज्ञेया तासु दीक्षां समाचरेत् ॥

यामले -

पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवीपीठचतुष्टये।
प्रयागे श्रीगिरौ काश्यां कालाकालं न शोधयेत् ॥

विष्णुयामले—

देवीबोधं समारभ्य यावत् स्यान्नवमी तिथि.।
कृता तासु बुधैर्दीक्षा सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥
शुक्लपक्षे विशेषेण तत्रापि तिथिरष्टमी।
तत्रापि शारदी दुर्गा यत्र देवी गृहे गृहे।
तत्र दीक्षा प्रकर्त्तव्या मासर्क्षादीन् न शोधयेत् ॥

तथा

बोधने चैव दुर्गायाः कालाकालं न शोधयेत्।
अशोकाख्याष्टमी यत्र रामाख्या नवमी तथा ॥
लग्ने वाप्यथवाऽलग्ने यत्र तत्र तिथावपि।
गुरोराज्ञानुरूपेण दीक्षा कार्या विशेषतः।
चतुर्थ्यङ्गारवारे च दिवसे त्रिदिवस्पृशि।
तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कथञ्चन ॥

समयातन्त्रे—

युगाद्यायां जन्मदिने विवाहदिवसे तथा।
विषुवायनयोर्द्वन्द्वे नैव किञ्चिद्विचारयेत् ॥

तथा—

शिष्यानाहूय गुरुणा कृपया यदि दीयते।
तदा लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कदाचन ॥
सर्वे वारा ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः।
यस्मिन्नहनि मन्त्रज्ञो गुरुः सर्वे शुभावहाः ॥

योगिनीतन्त्रे—

ग्रहणे च महातीर्थे नास्ति कालस्य निर्णयः ॥

यामल के अनुसार सूर्यग्रहण के समय 'श्री ह्रीं' 'क्लीं' मन्त्र तारामन्त्र और दुर्गामन्त्र ग्रहण करने से मोक्ष-लाभ होता है। सोमवारी अमावस्या, भौमवारी चतुर्दशी, रविवार की सप्तमी में मन्त्र-ग्रहण का फल सौ सूर्यपर्वों के समान होता है।

कुलार्णवतन्त्र का मत है कि रविवार में सप्तमी, सोमवार में अमावस्या मंगलवार में चतुर्थी और बृहस्पतिवार में अष्टमी तिथि देवपर्व के समान होती हैं अत इसमें दीक्षा ग्रहण करना चाहिये।

रुद्रयामल के अनुसार पुण्यक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, चारो देवीपीठ, प्रयाग, श्रीशैल और काशी में कालाकाल का विचार नहीं किया जाता है।

विष्णुयामल में लिखा है कि देवीबोधन के समय प्रतिपदा से नवमी तक की किसी भी तिथि में दीक्षा लेना अभीष्ट-प्रदायक होता है। यह काल शुक्ल पक्ष में होना चाहिये और उसमे भी अष्टमी अतिविशिष्ट है। इसमे भी शारदीय नवरात्र सर्वश्रेष्ठ है जिसमें दुर्गादेवी घर-घर मे रहती है। इस समय दीक्षा लेने में मास-नक्षत्र आदि का विचार अनावश्यक है।

दुर्गाबोधन के समय कालाकाल-शोधन अपेक्षित नही है अशोकाष्टमी, रामनवमी, लग्न या विना लग्न के जिस किसी तिथि मे गुरु-आज्ञारूप मे दीक्षाकार्य होना चाहिये। भौमवारी चतुर्थी से लेकर अगले तीन दिनों तक दीक्षा के लिये लग्नादि का विचार कदापि नही करना चाहिये।

समयातन्त्र के अनुसार युगादि तिथि, जन्मदिवस, विवाहदिवस, दोनो विषुवायनों अर्थात् उत्तरायन-दक्षिणायन मे कुछ भी विचारणीय नही है समयातन्त्र मे लिखा है कि गुरुदेव शिष्य को बुलाकर कृपापूर्वक स्वेच्छा से जब भी मन्त्र प्रदान करे तब लग्नादि के विचार की अपेक्षा नहीं रहती। ऐसे समय में वार-ग्रह-नक्षत्र और राशि आदि सभी शुभदायक हो जाते हैं। योगिनीतन्त्र के अनुसार ग्रहण-काल और महातीर्थ मे काल निर्णय आवश्यक नही है।

अथ वक्ष्यामि दीक्षायाः स्थानं तन्त्रानुसारतः ।
गोशालायां गुरोर्गेहे देवागारे च कानने ।
पुण्यक्षेत्रे तथोद्याने नदीतीरे च मन्त्रवित् ॥
धात्री बिल्वसमीपे च पर्वताग्रे गुहासु च ।
गङ्गायास्तु तटे वापि कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥

निषिद्धस्थानमाह—

गयायां भास्करक्षेत्रे विरजे चन्द्रपर्वते ।
चट्टुले च मतङ्गे च तथा कन्याश्रमेषु च ।

न गृह्णीयात्ततो दीक्षां तीर्थेष्वेतेषु पार्वति ॥

वाराहीतन्त्रे—

शुक्रोऽस्तो यदि वा वृद्धो गुर्वादित्यो भवेद्यदि ।
मेष-वृश्चिक-सिंहेषु तदा दोषो न विद्यते ॥

महाविद्यासु सर्वासु कालादिविचारो नास्ति; तदुक्तं मुण्डमालातन्त्रे—

कालादिशोधनं नास्ति न चामित्रादिदूषणम् ॥

दीक्षा-स्थान—गोशाला, गुरुगृह, देवमन्दिर, कानन, पुण्यक्षेत्र, उद्यान, नदी-तट, आमला और बिल्ववृक्ष के समीप, पर्वत के आगे, गह्वर और गंगातट में दीक्षा कोटिगुणा फल देती है। गया, भास्कर क्षेत्र, कोणार्क, विरजातीर्थ, चन्द्रशेखर पर्वत, चटगाँव, मातंगदेश और कामाख्या में दीक्षा निषिद्ध है।

वाराहीतन्त्र के अनुसार शुक्रास्त रहने पर, गुरु के वृद्ध होने पर भी मेष, वृश्चिक और सिंह लग्न में दीक्षा लेने में कोई दोष नहीं है।

मुण्डमालातन्त्र के अनुसार महाविद्याओं के मन्त्रग्रहण में कालादि और अरि-मित्रादि दोषों का विचार अपेक्षित नहीं है।

मालानिर्णयः

सनत्कुमारसंहितायां—

तर्जनी मध्यमानामा कनिष्ठा चेति ताः क्रमात् ।
तिस्रोऽङ्गुल्यस्त्रिपर्वाणो मध्यमा चैकपर्विका ।
पर्वद्वयं मध्यमायां मेरुत्वेनोपकल्पयेत् ॥

तत्र क्रममाह सनत्कुमारसंहितायाम्—

अनामा-मध्यमारभ्य कनिष्ठादित एव च ।
तर्जनीमूलपर्यन्तं दशपर्वसु सञ्जपेत् ॥

तथा—

अनामामूलमारभ्य कनिष्ठादित एव च ।
तर्जनीमध्यपर्यन्तमष्टपर्वसु सञ्जपेत् ॥

एतद्वचनन्तु अष्टोत्तरशतविषयं विष्णुविषयञ्च ।

माला-निर्णय—सनत्कुमारसंहिता के अनुसार तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा के क्रम से जप करे। तीनों अंगुलियों के तीन पर्व और मध्यमा के एक पर्व से जप करना चाहिये। मध्यमा के दो पर्व को मेरु माने और उनका लंघन न करे। इसका क्रम इस प्रकार का है कि अनामिका के मध्य पर्व से लेकर कनिष्ठादि होते हुए तर्जनी के मूल तक दस

पर्वों में जप करें। विष्णुमन्त्र के जप में अनामिकामूल से प्रारम्भ करके कनिष्ठापर्वों पर होते हुए तर्जनी मध्य पर्व तक आठ पर्वों पर जप करें। यह एक सौ आठ मन्त्रजप से सम्बन्धित है। मुण्डमालातन्त्र में इसे ही करमाला बताया गया है। यदि अष्टोत्तर शत जप करना हो तो उक्त क्रम में सौ संख्या पूर्ण होने पर अनामा के मूल से प्रारम्भ करके कनिष्ठादि क्रम से तर्जनी के मध्य पर्व तक आठ पर्वों में जप करें। मध्यमा के शेष दो पर्वों को मेरु मानें।

शक्तिविषये पुनः—

अनामिकात्रयं पर्व कनिष्ठा च त्रिपर्विका ।
मध्यमायाश्च त्रितयं तर्जनीमूलपर्वणि ।
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् स तु पापकृत् ॥

इति श्रीक्रमवचनात् ।

तथा हंसपारमेश्वरे—

पर्वत्रयमनामायाः परिवर्तेन वै क्रमात् ।
पर्वत्रयं मध्यमायास्तर्जन्येकं समाहरेत् ॥
पर्वद्वयञ्च तर्जन्या मेरुं तद्विद्धि पार्वति ।
शक्तिमाला समाख्याता सर्वतन्त्रप्रदीपिका ॥

तथा—

अनाममूलमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण च ।
मध्यमामूलपर्यन्तमष्टपर्वसु सञ्जपेत् ॥

इदमप्यष्टोत्तरशतादिविषयम् ।

शक्तिमन्त्र के जप में अनामिका का मध्य और मूल पर्व, कनिष्ठा के तीन पर्व, अनामा का अग्रपर्व, मध्यमा के तीन पर्व तथा तर्जनी का मूल पर्व—इन दश पर्वों का उपयोग करे; क्योंकि श्रीक्रम के वचनानुसार तर्जनी के अग्र और मध्य पर्व में शक्ति का मन्त्र जपने से पाप होता है। तर्जनी के दोनों पर्वों को इस दशा में मेरु मानें।

हंसपारमेश्वरतन्त्र के अनुसार इसी को शक्तिमाला कहते हैं। अष्टोत्तरशत जप करते समय उक्त क्रम से शत संख्या पूर्ण होने पर अनामिका के मूल पर्व में आरम्भ करके कनिष्ठादि के क्रम में मध्यमा के मूल पर्व तक आठ जप करें।

श्रीविद्याविषये पुनः—

अनाममध्यमयोश्च मूलाग्रञ्च द्वयं द्वयम् ।
कनिष्ठायाश्च तर्जन्यास्त्रयं पर्व सुरेश्वरि ॥

अनामामध्यमायाश्च मेरुः स्याद्द्वितयं शुभम् ।
प्रादक्षिणक्रमाद्देवि जपेत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥

इति यामलवचनात् ।

कनिष्ठामूलमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण च ।
तर्जनीमूलपर्यन्तमष्टपर्वसु सञ्जपेत् ॥

इदमप्यष्टोत्तरशतविषयम् । मुण्डमालातन्त्रे—

अनामिकाद्वयं पर्व कनिष्ठादिक्रमेण तु ।
तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्त्तिता ॥
अंगुलिर्न वियुञ्जीत किञ्चिदाकुञ्चिते तले ।
अङ्गुलीनां वियोगाच्च छिद्रे च स्रवते जपः ॥

अन्यत्रापि—

अङ्गुल्यग्रेषु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने ।
पर्वसन्धिषु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥
गणनाविधिमुल्लंघ्य यो जपेत्तज्जपं यतः ।
गृह्णन्ति राक्षसास्तेन गणयेत् सर्वथा बुधः ॥

विश्वसारे—

जपसंख्यां तु कर्त्तव्या नासंख्यातं जपेत्सुधीः ।
असंख्याकारकस्यास्य सर्वं भवति निष्फलम् ॥

तन्त्रे—

हृदये हस्तमारोप्य तिर्यक् कृत्वा कराङ्गुलीः ।
आच्छाद्य वाससा हस्तौ दक्षिणेन जपेत्सदा ॥

यामल के वचनानुसार श्रीविद्या के मन्त्रजप में अनामा, मध्यमा के मूल और अग्र—इन दो-दो पर्वों, कनिष्ठा के तीन पर्व और तर्जनी के तीन पर्व—कुल दश पर्वों पर जप करे। अनामा और मध्यमा के शेष दो पर्वों को मेरु माना जाता है। अष्टोत्तरशत जप करने के लिये उक्त क्रम से सौ संख्या पूरी करने पर कनिष्ठा के मूल से प्रारम्भ करके तर्जनी के मूल तक प्रदाक्षिणक्रम से आठ पर्वों पर आठ जप करे।

मुण्डमालातन्त्र के अनुसार अनामिका के दो पर्व कनिष्ठाक्रम से तर्जनी-मूलपर्यन्त जप को करमाला कहते हैं। जपकाल में अंगुलियों को अलग न रक्खे और हथेली को कुछ सिकोड़कर जप करे। अंगुलियों को अलग करके छिद्र रखते हुए जप करने से

जपफल की हानि होती है। इसी प्रकार अंगुली के अग्रभाग या मेरु का लंघन करते हुए पर्वसन्धियों में जो जप किया जाता है, वह निष्फल होता है। गणनाविधि का उल्लंघन करके जो जप होता है, उसका फल राक्षस हर लेते हैं; इसलिये विद्वानों को विधिपूर्वक जप करना चाहिये। यह विश्वसारतन्त्र का मत है। इसी के अनुसार जपसंख्या की गणना करते हुए जप करे। हृदय पर हाथ रखकर, अंगुलियों को कुछ सिकोड़कर और दोनों हाथों को वस्त्र से ढक कर दाहिने हाथ से जप करना चाहिये।

जपसंख्याधारणे निषिद्धानिषिद्धानि

नाक्षतैर्हस्तपर्वैर्वा न धान्यैर्न च पुष्पकैः ।
न चन्दनैर्मृत्तिकया जपसंख्या न कारयेत् ॥
लाक्षा-कुसीद-सिन्दूरं गोमयञ्च करीषकम् ।
विलोड्य गुलिकां कृत्वा जपसंख्यान्तु कारयेत् ॥

कुसीदं रक्तचन्दनं करीषं शुष्कगोमयभस्म। इदन्तु पुरश्चरणविषये ज्ञेयम्।

जपने यादृशी माला संख्यानेऽपि च तादृशी ।

जपसंख्या-धारणविधि—अक्षत, अंगुलियों के पर्व, धान्य, पुष्प, चन्दन और मिट्टी से जपसंख्या-धारण न करे। इसके लिये लाक्षा, रक्तचन्दन, सिन्दूर और शुष्क गोबर को एकत्र करके इनके चूर्ण से गोलियाँ बना ले। इन्हीं गोलियों से जपसंख्या को याद रक्खे। किसी-किसी मत से ये गोलियाँ पुरश्चरण जप में प्रयुक्त होती हैं। माला-जप में उसी माला से जपसंख्या याद रखनी चाहिये।

वर्णमाला

सनत्कुमारीये—

क्रमोत्क्रमगतैर्माला मातृकार्णैः क्षमेरुकैः ।
सबिन्दुकैः साष्टवर्गैरन्तर्यजनकर्मणि ।
आदि कु चु टु तु पु यु शवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥

तत्रायमर्थः—अकारादिवर्णान् प्रत्येकं सबिन्दुं कृत्वा अनुलोमविलोमक्रमेण शतं सङ्ख्य्य अकारादीनां वर्णानां कवर्गादीनाञ्चान्त्यवर्णं सानुस्वारं कृत्वा पूर्वमुच्चार्य पश्चात् मन्त्रजपः कर्त्तव्यः। अनेन प्रकारेणाष्टोत्तरशतसंख्यजपो भवति। अन्तर्यजन इत्युपलक्षणम्। तथा च—

सबिन्दुं वर्णमुच्चार्य पश्चान्मन्त्रं जपेद्बुधः ।
अकारादिक्षकारान्तं बिन्दुयुक्तं विभाव्य च ।
वर्णमाला समाख्याता अनुलोमविलोमिका ॥